* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

वर्ष ७०

संख्या १२

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,२५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०५३, श्रीकृष्ण-सं० ५२२२, दिसम्बर १९९६ ई०

चित्र-सूची

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

भक्तिमती मीरा

B.K. Mitra

'आजु मैं देख्यो गिरधारी'

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना नैवासभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्॥

वर्ष ७० } गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०५३, श्रीकृष्ण-सं० ५२२२, दिसम्बर १९९६ ई० { संख्या १२ पूर्ण संख्या ८४१

मीराको दर्शन

जबसे मोहि नंदनंदन दृष्टि परी माई। कहा कहूँ अनुपम छबि बरनी नहिं जाई॥
मोरनकी चन्द्रकला शीश मुकुट सोहै। केसर कौ तिलक भाल तीन लोक मोहै॥
कुण्डलकी झलकनी कपोलनपर छाई। मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥
ललित भृकुटि, तिलक-भाल चितवनमें टौना। खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग छौना॥
सुंदर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा। नटवर प्रभु बेष धरे रूप अति बिशेखा॥
हँसन-दसन दाड़िम-दुति मन्द-मन्द हाँसी। दमकि-दमकि दामिनि दुति चमकी चपला-सी॥
क्षुद्रघण्टिका अनुपम बरनी नहिं जाई। गिरिधर प्रभु चरणकमल 'मीरा' बलि जाई॥

कल्याण

जीवनमें सर्वप्रथम हम निश्चय करें कि हमें कहाँ जाना है—हमारे जीवनका लक्ष्य क्या है, हमको संसारमें क्या पाना है? लोक-व्यवहारमें यात्रा आरम्भ करनेके पूर्व हम यह निश्चय करते हैं कि हमें कहाँ जाना है। स्टेशनपर जाकर बुकिंग ऑफिसके सामने कोई खड़ा हो जाय और कहे—'बाबूजी! हमें टिकट दीजिये।' बाबूके पूछनेपर कि 'कहाँका टिकट चाहिये?' वह उत्तरमें कहे कि—'यह तो पता नहीं, कहाँ जाना है। बस, टिकट दे दीजिये।' बाबू उसकी बात सुनकर हँसेगा और कहेगा कि बिना किसी स्थानका नाम बताये कहाँका टिकट दिया जाय। यदि यह निश्चय कर लिया जाय कि कलकत्ता जाना है, बंबई जाना है, नागपुर जाना है या अमुक स्थानपर जाना है तो माँगनेपर बाबू वहाँका टिकट दे देंगे; फिर कोई-न-कोई बता भी देगा उस टिकटको देखकर कि 'अमुक गाड़ीमें बैठो, आगे चलकर अमुक-अमुक स्थानोंपर गाड़ी बदलो और गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाओ।' बिना गन्तव्य स्थानका निश्चय किये न टिकट मिलता है और न कोई जानेका मार्ग ही बतलाता है। यही बात जीवनके सम्बन्धमें है। जीवनका लक्ष्य निर्धारित हो जानेपर वहाँतक पहुँचनेका मार्ग ज्ञात हो जायगा और मार्गकी कठिनाइयोंका तथा उनसे मुक्त होनेका उपाय भी कोई-न-कोई बता ही देगा।

संसारमें अधिकांश व्यक्ति निरुद्देश्य ही भटक रहे हैं। संसारके भोगोंमें सुखकी खोज करना, यह निरुद्देश्य ही भटकना है। अभी सुख मिला, इससे मिला, इससे नहीं मिला तो उससे मिलेगा, उससे नहीं मिला तो और किसीसे मिलेगा—इस प्रकार एक-एक करके भोगोंमें सुखकी खोज होती है, पर सुख कहाँ मिलेगा, यह किसीको पता नहीं। जहाँ-जहाँ मनुष्य सुख खोजने जाता है, वहाँ-वहाँ वह उससे वञ्चित ही रहता है। भगवान्ने जो डंकेकी चोटपर इस लोकको **'अनित्यम्, असुखम्'** कहा है, उनकी इस उक्तिका आशय यह है कि जगत्में कहीं सुख है नहीं, जगत् विनाशी है तथा सुखसे विरहित है। परंतु मनुष्य भगवान्के इन वचनोंपर विश्वास नहीं करता और सुखको वहाँ खोजता है, जहाँ वह है नहीं। उसका यह प्रयत्न ठीक वैसा ही है, जैसे जलकी इच्छा होनेपर रेगिस्तानकी बालूमें उसे खोजना।

रेगिस्तानका दृश्य है—हिरनोंकी टोली जा रही है। सब-के-सब प्याससे व्याकुल हैं। प्रातःकालका समय है, सूर्यकी किरणें बालूके मैदानपर पड़ रही हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सामने जलका समुद्र लहरा रहा है। हिरनोंका समूह पानी पीनेके लिये शीघ्रतासे उस ओर बढ़ता है, पर वहाँ पहुँचनेपर उसे केवल बालू मिलती है, जलकी बूँद भी दिखायी नहीं देती। हिरन कुछ आगे बढ़ते हैं, परंतु वही दशा—बालूके सिवा वहाँ कुछ नहीं मिलता तथा जलकी प्रतीति कुछ और आगे होने लगती है। इस प्रकार जैसे-जैसे हिरन उस तप्त बालूपर छलाँग मारते हुए आगे बढ़ते हैं, त्यों-त्यों और अधिक तप्त बालू मिलती चली जाती है एवं जलकी प्रतीति निरन्तर आगेकी ओर होती जाती है। इस प्रकार जलकी खोजमें तप्त बालूके कारण कितने ही हिरन घायल हो जाते हैं तथा कुछ अपने प्राण भी गँवा बैठते हैं। यही दशा संसारमें हमारी हो रही है। हमलोग संसारमें जिनके पास अधिक भोग हैं, उनको सुखी मानकर, शान्त मानकर ललचायी आँखोंसे उनकी ओर देखते हैं तथा वे जिस स्थितिमें हैं, उस स्थितिको प्राप्त करना चाहते हैं। सुखकी ललकमें हम चाहते हैं—अमुक राजाके समान बनें, अमुक अधिकारीके समान बनें, अमुक मन्त्रीके समान बनें, अमुक व्यवसायीके समान बनें, अमुक धनीके समान बनें। इतना ही नहीं, हम वैसा बननेका प्रयत्न भी करते हैं, पर क्या हमारा यह प्रयत्न कभी सफल हुआ है? हम जैसा बनना चाहते हैं क्या हम वैसा बन पाते हैं? यदि बन भी जाते हैं तो वहाँ भी हमें वही दुःखकी ज्वाला मिलती है, जो हमें अपनी पुरानी स्थितिमें प्राप्त थी। सर्वत्र यही हो रहा है और इसका परिणाम भी प्रत्यक्ष है कि हिरनोंकी भाँति सभी संतप्त हैं और सभी तड़प-तड़पकर अपना जीवन दे रहे हैं।

जीवनकी इस वास्तविकताको हम समझें और निश्चय करें कि जगत्के भोगोंमें सुख-शान्ति कहीं भी नहीं है—नहीं है, नहीं है; अतएव वे हमारे जीवनका लक्ष्य नहीं हो सकते। भगवान् ही नित्य शान्तिके, नित्य सौख्यके स्रोत हैं, उन्हींको प्राप्त करना हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये।—**'शिव'**

भगवत्प्राप्तिमें कारण—श्रद्धा और निष्कामभाव

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

सारे उत्तम गुण भाववाचक हैं। इनमें सबसे बढ़कर निष्कामभाव, प्रेमभाव तथा परम श्रद्धा है। ये सर्वोत्तम भाव हैं। दया भी भाव है, समता भी भाव है, शान्त भी भाव है। एक-एक भाव कल्याण करनेवाले हैं। ईश्वर यानी परमात्मा और महापुरुष अर्थात् महात्मामें श्रद्धाका भाव बड़ा ही उच्चकोटिका भाव है, इससे स्थिति बदल जाती है। परंतु श्रद्धाकी बात बार-बार बतलानेपर भी श्रद्धा होती नहीं। इसका कारण समझमें नहीं आता कि आखिर श्रद्धा क्यों नहीं होती? यद्यपि विचारके द्वारा लोग श्रद्धा करना चाहते हैं, किंतु फिर भी श्रद्धा नहीं होती। हाँ, युक्तियोंसे यह बात तो समझमें आती है कि परमात्मा या महात्मा—किन्हींमें भी श्रद्धा करनी हो तो उनमें गुणबुद्धि करनी चाहिये। गुणबुद्धि करनेसे श्रद्धा बढ़ती है और अवगुण-बुद्धिसे श्रद्धा घटती है। इसके सिवाय अन्तःकरणके शुद्ध होनेसे श्रद्धा बढ़ती है। अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये शास्त्रविहित उत्तम कर्म निष्कामभावसे करने चाहिये। जप, तप, दान, सेवा (उपकार), तीर्थ, व्रत आदि जितने भी शास्त्रीय उत्तम कर्म बतलाये गये हैं—इन सबका निष्कामभावसे आचरण करनेपर अन्तः-करण शुद्ध होता है। भगवान्‌की भक्ति भी निष्कामभावसे करनेके कारण अन्तःकरणकी परिशुद्धि शीघ्र ही हो जाती है। लोग अपनी समझके अनुसार उत्तम कर्म भी करते हैं, ईश्वरकी भक्ति भी करते हैं और भाव भी जहाँतक सम्भव होता है निष्काम रखते हैं, किंतु कोई-कोई भाई तो निष्कामके तत्त्वको समझते ही नहीं और सकामभावसे भक्ति करते हैं, उनसे ईश्वरकी भक्ति भी नहीं होती और उत्तम कर्म भी नहीं होते, बल्कि उनका त्याग ही हो जाता है जो और भी पतनका कारण हो जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। इसका सुधार करना चाहिये। मान लो, अपने घरमें कोई बीमार हो गया तो गायत्रीपुरश्चरण या साधारण अनुष्ठान निष्कामभावसे करवाना चाहिये। यह अनुष्ठान आत्माकी शुद्धिके लिये, परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे, भगवान्‌में प्रेम होनेके लिये करना-करवाना चाहिये, रोग ठीक होनेके लिये नहीं। इस प्रकार किये गये निष्काम अनुष्ठानका प्रभाव बहुत महत्त्वका होता है। समय-समयपर ऐसे अनुष्ठान स्वयं करने चाहिये अथवा करवाने चाहिये, भले ही कम किये जायँ। आत्माके कल्याणके लिये जप, गीताका अनुष्ठान आदि करने चाहिये। इससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। यह प्रणाली बहुत उत्तम है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छा बहुत तुच्छ है, सकाम कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध हो ही नहीं सकता, भले ही जन्म-जन्मान्तरतक करता रहे। सकामभावसे की गयी भगवद्भक्ति तो प्रेम और श्रद्धा होनेपर कुछ काम करती है।

श्रद्धालुका संग करनेसे श्रद्धा बढ़ती है। 'श्रद्धा सबसे बढ़कर है' ऐसा समझनेपर भी श्रद्धा बढ़ती है। 'भगवान् हमारे परम श्रद्धेय हैं तथा गीता भगवान्‌का वचन है, उनकी आज्ञा है'—ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये। महात्मामें कितनी श्रद्धा है यह उन महात्माकी आज्ञापालनपर निर्भर है। यह श्रद्धाकी कसौटी है। जिसकी ईश्वरमें श्रद्धा है, उसके लिये ईश्वरका उपदेश, सिद्धान्त उसका अपना ही सिद्धान्त हो जाता है। वह भगवान्‌के मनके भाव, संकेत एवं प्रेरणाके अनुसार चलता है। अर्थात् आदेशके अनुकूल ही चलता है। आदेशकी अवहेलना तो किसी स्थितिमें कर ही नहीं सकता। आदेशकी तो बात ही क्या है, संकेतके अनुसार ही चलता है। इसी प्रकार यदि किसी महापुरुषमें श्रद्धा हो जाती है तो उस महापुरुषका सिद्धान्त ही श्रद्धालुका सिद्धान्त हो जाता है। श्रद्धालुकी प्रत्येक क्रिया उनके मनके भाव एवं संकेतके अनुसार होती है। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब उन्हें पहचाननेवाले भक्तोंकी सारी क्रियाएँ भगवान्‌के संकेतके अनुसार हुआ करती हैं। जैसे कठपुतली सूत्रधारके संकेतके अनुसार नाचती है।

एक बार बलदेवजीने देखा कि सब ग्वाल-बाल, बछड़े कृष्णरूपमें दिखायी दे रहे हैं। उन्होंने भगवान्‌से पूछा कि क्या बात है? श्रीकृष्णजीने बताया कि ब्रह्माजीने मेरी परीक्षा लेनेके लिये सभी ग्वाल-बाल एवं बछड़ोंको छिपा दिया है। अतः मैं ही इनके रूपमें विचरण कर रहा हूँ। बलदेवजी उस रहस्यको समझ गये। इसी प्रकार गोपियाँ भगवान्‌के

भावको समझती थीं। उनके संकेतके अनुसार चलती थीं, उन्हें सब तरफ भगवान् ही दीखते थे। भगवान्की सारी चेष्टाएँ उनके लिये लीला थीं। उनकी सारी चेष्टाएँ उन्हें परम आनन्द देनेवाली थीं। वही असली लीला थी। हमलोग जो रासलीला एवं कृष्णलीला देखते हैं, उनमें हमारे भाव उच्चकोटिके नहीं होते तथा लीलाएँ भी शास्त्रीय ढंगसे नहीं की जातीं। इसलिये इनसे विशेष लाभ नहीं उठा सकते। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लेकर जो लीलाएँ कीं, रामायणमें उनका जो चरित्र है, उन लीलाओंको याद करके मानस-पटलपर अङ्कित कर नेत्रोंके सामने भगवान्की विभिन्न लीलाओंको प्रत्यक्ष करता रहे, जैसे भगवान् वनमें गये, ऋषियोंके आश्रममें गये, इस प्रकार लीला कर रहे हैं। उससे विशेष लाभ होता है।

संसारमें जो महात्मा पुरुष हैं, वास्तवमें उनके सारे चरित्र लीला ही हैं। हम इस प्रकार देखते रहें तो हमारी श्रद्धा बढ़ सकती है। परमात्मामें श्रद्धा होनेपर जब हमारा भाव उच्चकोटिका हो जाता है, तब गीताके एक-एक श्लोकका भाव अद्भुत प्रतीत होने लगता है। उसे सर्वत्र और सबमें वासुदेव-ही-वासुदेव दिखायी देता है। भगवान्ने कहा है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

तात्पर्य यह कि 'बहुत जन्मोंके अन्तिम जन्ममें सब कुछ परमात्माका ही स्वरूप है' इस प्रकार भगवान्के तत्त्व-रहस्यको जानकर जो भजता है, वह ज्ञानी महात्मा दुर्लभ तथा उच्चकोटिका है। उसे सब जगह परमात्मा-ही-परमात्मा दीखते हैं। वस्तुमात्रमें परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जलके तत्त्वको जाननेवाले पुरुषको बादल, बर्फ एवं हवा आदिमें भी जल-ही-जल दीखता है, उनमें जलके सिवाय कोई अन्य वस्तु दीखती ही नहीं। इसी प्रकार जो परमात्मतत्त्वको समझ जाता है, उसे सारा संसार परमात्मामय ही दीखता है। जब सारा संसार परमात्माका स्वरूप है तो उसमें होनेवाली सारी क्रिया परमात्माकी ही लीला हुई। इस दृष्टिसे, भावसे जो देखता है उससे परमात्मा अलग कैसे हो सकते हैं, भगवान्ने कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ५। ३०)

जो मुझ परमात्माको सब जगह देखता है और सबको मुझमें देखता है, उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और वह मुझसे कभी अदृश्य नहीं होता। जैसे ज्ञानी बादलोंके समूहको आकाशमें देखता है और आकाशको बादलोंमें देखता है, उसके लिये आकाशका ज्ञान कभी हटता नहीं। आकाश ही वायुके रूपमें परिणत होकर, तेजके रूपमें परिणत होकर, जलके रूपमें प्रकट होता है। बादल, बर्फ, ओले और बूँद सब आकाशसे ही बने हैं, यानी आकाश ही उन रूपोंमें परिणत हुआ है। जो आकाशके इस तत्त्वको समझ जाता है उसे सब जगह आकाश-ही-आकाश दीखता है, आकाश उससे छिप ही कैसे सकता है। आकाशकी जगह भगवान्को समझे तो भगवान् दीखेंगे। आकाश तो जड़ है, इसलिये आकाश देखनेवालेको आकाश नहीं देखता। किंतु भगवान् चेतन हैं, इसीलिये भगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

जो मुझे जिस प्रकार भजता है, मैं उसे उसी प्रकार भजता हूँ। जो पुरुष सर्वत्र परमात्माको ही देखता रहता है, परमात्मा उससे छिप नहीं सकते, अपितु उसको देखते ही रहते हैं। यह उच्चकोटिका भजन है। ऐसे भक्तके लिये भगवान् कहते हैं—

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३१)

अर्थात् सारे भूत-प्राणी मेरे ही स्वरूप हैं, मैं ही सबकी आत्मा हूँ। मुझमें एकीभावसे स्थित होकर, तन्मय होकर जो मुझे भजता है अर्थात् सर्वत्र मेरा अनुभव करता है, इसका अनुभव करना मेरेमें रमण करना है। उसके अनुभवमें मेरे सिवाय कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं। साधकके लिये यह उच्चकोटिका साधन है और सिद्धकी यह स्वाभाविक अवस्था है। जो इस प्रकारके भावसे भावित होकर हर

समय इसे साधन बना लेता है, उसे विज्ञानानन्दघन निर्गुण-निराकार साक्षात् परमात्मा सगुण साकारके रूपमें परिणत होकर दीखते रहते हैं, प्रह्लादकी ऐसी ही स्थिति थी। वह इसी प्रकार सर्वत्र परमात्माके स्वरूपका अनुभव किया करते थे। गोपियोंकी भी ऐसी ही स्थिति थी। इस प्रकारका ज्ञान तथा निर्गुण-निराकारका ज्ञान श्रद्धासे होता है—'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्**'। ज्ञान होनेपर शीघ्र ही परम शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है—

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जो परमात्माके तत्त्व-रहस्यको समझ जाता है उसे हर समय भगवान्‌का स्वरूप अलौकिक रूपमें दीखता रहता है। इसी प्रकारसे जो महात्माके तत्त्व-रहस्यको समझ जाता है उसे महात्माकी सारी चेष्टा लीलाके रूपमें दीखने लग जाती है और वह भी महात्माके अनुकूल होकर महात्मा ही बन जाता है। महात्माका भाव ही उसका भाव हो जाता है।

महापुरुषोंके हृदयका जो भाव और अनुभव है और उनकी वाणीके द्वारा जो भी कहा जाता है, वही शास्त्र है, श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार बर्तते हैं। वह जो कुछ प्रमाणित कर देता है, लोग भी उसीके अनुसार आचरण करते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३। २१)

सृष्टिके आदिमें अजन्मा ब्रह्माजीद्वारा जो आदेश दिया गया वही वेदके नामसे प्रसिद्ध है। वेदके मन्त्रोंका जिन ऋषियोंको अनुभव हुआ वे उच्चकोटिके ऋषि माने गये—

'मन्त्रद्रष्टारो ऋषयः'

मन्त्रके द्रष्टा ऋषि हैं। वेदमन्त्रोंके भावका जिन्हें अनुभव हुआ वे ही द्रष्टा हैं और उन्हींकी ऋषि संज्ञा है। उनकी वाणीद्वारा जो कुछ बात कही गयी है, वही शास्त्र है, वे ही स्मृतियाँ हैं। ऋषियोंके हृदयका जो भाव वाणीके द्वारा कहा गया, उसीका नाम स्मृति है। जैसे भगवद्गीता भगवत्स्मृति है। इसमें साक्षात् भगवान्‌के हृदयगत भावोंका वाणीके द्वारा विकास हुआ है। भगवान्‌ने अर्जुनको निमित्त बनाकर गीताका आदेश किया है। गीता भगवान्‌के हृदयका भाव है। इसलिये यह भगवान्‌का हृदय है। वाणीके द्वारा कहा गया है, इसलिये इसे भगवान्‌की वाङ्मयी मूर्ति भी कहते हैं। अतः गीताके उपदेशको इष्ट मानकर उसकी उपासना करनेसे भी हमारा कल्याण हो सकता है। भगवान्‌के उपदेश, आदेश तथा उद्देश्यके अनुसार अपना जीवन बना लें तो कल्याणमें शंकाकी कोई बात ही नहीं है। केवल एक श्लोकके भावको समझकर धारण करनेसे भी मुक्त हो सकते हैं। ऐसे बहुतसे श्लोक हैं जिनके एक-एक पदमें ऐसी सामर्थ्य है कि उसके अनुसार भगवत्प्राप्ति हो सकती है, किंतु इसमें श्रद्धा होनी चाहिये, विश्वास होना चाहिये। इसमें श्रद्धा-विश्वास होनेपर हम इसके विपरीत जा नहीं सकते। नित्य नये भाव प्रतीत होने लगते हैं। गीताके श्लोकोंका अर्थ और भाव चमक उठता है और उसमें अलौकिकता दीखने लग जाती है। जैसे-जैसे श्रद्धा बढ़ती जाती है, भाव भी बढ़ता जाता है और जब भाव बढ़ जाता है फिर साधक इससे अलग नहीं हो सकता। भाव बढ़ते-बढ़ते परम श्रद्धा हो जाती है। उसको सर्वत्र भगवान् एकदम प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगते हैं। भगवान् सर्वत्र हैं ही, श्रद्धाकी कमीके कारण प्रतीति नहीं होती। महात्मा पुरुषको जबतक हम नहीं पहचानते तबतक वे हमें साधारण मनुष्यकी तरह दीखते हैं। जब उन्हें महात्मा समझ लिया जाता है तब उसी क्षण उसका भाव बदल जाता है।

यही बात भगवान्‌में है। त्रेतायुगमें भगवान् राम और लक्ष्मणको हनुमान्‌जीने जब पहली बार देखा तो उन्हें कुछ विशेषता प्रतीत हुई, किंतु मनुष्य-अवतारमें होनेके कारण मनुष्य-रूपमें दीख रहे थे। हनुमान्‌जीने प्रश्न किया और भगवान्‌ने उनका उत्तर दिया। भगवान्‌के साथ वार्तालाप करते-करते हनुमान्‌जीका भाव क्षणमात्रमें एकदम बदल गया।

भगवान् श्रीकृष्ण बाललीला कर रहे थे। ब्रह्माजीको भगवान् श्रीकृष्णजीकी एक साधारण बालककी-सी क्रिया देखकर मोह (भ्रम) हो गया। भगवान्‌की कृपासे जब मोह दूर हो गया, तब वही ब्रह्माजी भगवान् श्रीकृष्णको दूसरे रूपमें देखने लग गये। उत्तंक ऋषिने भगवान् श्रीकृष्णको

एक प्रभावशाली व्यक्ति समझ रखा था। वे यह नहीं जानते थे कि ये भगवान् हैं। जब वे भगवान्‌को शाप देनेके लिये तैयार हो गये, तब भगवान्‌ने स्वयं उन्हें अपना परिचय दिया और अपना विश्वरूप दिखाया, उसी क्षण उत्तंक ऋषिका भाव बदल गया। वे समझ गये कि ये साक्षात् भगवान् हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा कि मैं कभी देवताके रूपमें, कभी यक्ष आदिके रूपमें प्रकट होता हूँ। इस समय मनुष्यरूपमें प्रकट हुआ हूँ। आप मुझे नहीं जानते, इसलिये शाप देनेके लिये तैयार हो गये। आप मुझे शाप नहीं दें, क्योंकि आपके शापका मेरे ऊपर तो कोई असर नहीं होगा, किंतु आपका गुरु-सेवारूपी तप नष्ट हो जायगा। इसीकी रक्षाके लिये मैंने आपको अपना भेद बतलाया कि मैं साक्षात् परमात्मा ही मनुष्यरूपमें प्रकट होकर लीला कर रहा हूँ। ऐसा कहनेपर भी जब उन्हें विश्वास नहीं हुआ तब भगवान्‌ने उन्हें अपना विश्वरूप दिखलाकर विश्वास कराया। कहीं-कहीं भगवान् इस प्रकार भी करते हैं। फिर जो भगवान्‌में श्रद्धा करता है, भगवान्‌को जानना चाहता है, भगवान् उसके लिये प्रकट नहीं होंगे तो किसके लिये होंगे।

अवतारके समय भगवान् श्रीकृष्णका जो स्वरूप था, वह ठीक मनुष्यके जैसा ही था। देखनेमें उसमें मनुष्यकी अपेक्षा कोई विलक्षणता नहीं थी। कोई भी अलौकिक बात नहीं थी। हाथ, पैर और आकृति सभी कुछ तो साधारण मनुष्योंके-से थे। बालकरूपमें दूसरे बालकोंकी तरह ही खेलते थे। इसी कारण उनकी लीलासे ब्रह्माजीको भी मोह हो गया। जब ब्रह्माजीको उनका प्रभाव दिखायी दिया, उनके स्वरूपका ज्ञान हुआ तब उनका भाव तत्क्षण बदल गया।

इसी प्रकार महापुरुषोंका प्रभाव तथा ईश्वरका प्रभाव देखकर एवं उनमें उनके गुणोंको देखकर श्रद्धा हो जाती है तथा श्रद्धा होनेसे गुण दीखते हैं, श्रद्धा होनेसे प्रभाव दीखता है। श्रद्धालुओंके संगसे श्रद्धा होती है और फिर परम श्रद्धा होनेसे परम शान्ति तथा भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

एक बार बोलिये जय जनक-दुलारी की

ए हो रघुलाल, कहि के आपनो निहाल कीन्हों,
जाऊँ बलिहारी, प्यारी नवल चिन्हारी की।
लीजै मन माने फूल रुचि के अनुकूल लाल,
गेन्दा गुलाब, गली जूथिका निवारी की।
आग्रह किंतु एक, नाथ! बिलग न मानिये जू,
रखिये मर्याद या विदेह-फुलवारी की।
'नारायण' बाग में प्रवेश करिबे से पूर्व,
एक बार बोलिये जय जनक-दुलारी की॥

× × ×

बोल गये इतना, पर इधर उधर की बात,
मतलब की बात किंतु बोलत शरमावोगे।
रघुकुल (की) मर्यादा का इतना है ध्यान तो पै
निमिकुल मर्यादा से बाहर क्यों जावोगे।
आये 'नारायण' प्रभु प्रेम-नगरी, के माँहि,
प्रेम के अधीन होय हा हा यहाँ खावोगे।
जब लौ नहिं जनक-दुलारी जू की बोलो जय,
तौ लौं इस बाग में प्रवेश नहीं पावोगे॥

—श्रीनारायणदासजी 'भक्तमाली'
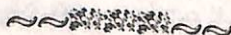
प्रभुकृपा

(ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

प्रभुकृपाके बिना उनकी दुस्तरा मायाको पार करना अत्यन्त असम्भव है। यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण प्राणी सर्वान्तरात्मा, सर्वाधिष्ठान भगवान्‌के अंश ही हैं। जैसे जलसे तरंग, अग्निसे विस्फुलिंग (चिनगारियाँ), महाकाशसे घटाकाश, उदञ्चनाकाश आदि उद्‌गत (उत्पन्न) होते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण चेतन-वर्गकी उत्पत्ति भगवान्‌से होती है। वस्तुत: अत्यन्त निरुपाधिक तत्त्वमें वास्तविक अंशांशिभाव भी नहीं बन सकता, क्योंकि निरवयव, निरंशमें अवयव एवं अंशकी भावना सर्वथा असम्भव है, तथापि जैसे अविकृत कौन्तेय (कर्ण)-में भ्रमसे ही राधासुत होनेकी भ्रान्ति हो गयी, वैसे ही प्रत्यक्चैतन्याभिन्न, स्वप्रकाश चिद्रूपमें ही भ्रमसे जीवभाव भासित होता है। जैसे मायावी अपनी चमत्कारपूर्ण मायाद्वारा निर्विकार-रूपसे स्थिर रहकर ही आकाशमें कच्चे सूत्रकी कुखरी (बंडल) फेंककर शस्त्रास्त्र-सुसज्जित वीर-वेषमें सूत्रके सहारे ऊपर चढ़ता है, चढ़ते-चढ़ते अदृश्य हो जाता है और फिर दैत्योंसे युद्ध करता है, युद्ध करते-करते उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग—सिर आदि अवयव पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, उसकी पत्नी उसे लेकर चितारोहण करके पतिकी सहगामिनी हो जाती है, यह सब घटना प्रत्यक्ष दिखायी देनेके पश्चात् वह उसी तागेके सहारे फिर आकाशसे उतरता हुआ दिखायी देता है, फिर भी वास्तविक मायावी अपनी मायासे लोगोंकी दृष्टिसे ओझल होकर जहाँ-का-तहाँ ही विराजमान रहता है, वैसे ही प्रत्यक्चिदात्मा भगवान् निर्विकार, कूटस्थ, एकरस-रूपसे सर्वदा स्वरूपस्थ होनेपर भी समष्टि-व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म, कारण—जगत्, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति-अवस्था आदि प्रपञ्च फैलाकर उनपर विश्व-तैजस-प्राज्ञ, विराट्-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत-रूपमें अनुभूयमान होता है, अनेक व्यवहारोंमें तल्लीन, तज्जन्य शोक-मोहादि उपद्रवोंमें फँसा हुआ दिखायी देता है, परंतु फिर भी उसके स्वरूपमें किंचित् भी विकार या हलचल नहीं होती। प्रपञ्च एवं प्रपञ्चरूप स्वरूपसे पृथक्, असंग, कूटस्थ-स्वरूप सर्वदा एकरस ही रहता है। इसी देहमें अन्तर्मुख होकर देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहमर्थ आदि अतत् (अनात्मा)-का अपोहन करते हुए यदि ढूँढ़े तो उसके उपलब्ध होनेमें कठिनाई नहीं, परंतु जैसे कोई घरमें खोयी हुई वस्तुको वनमें ढूँढ़े, वैसे ही बहिर्मुख प्राणी आन्तर-वस्तुको—भीतरकी खोयी वस्तुको बाहर ढूँढ़ता है। विचार करनेपर सर्व-भास्य दृश्यके भासक निर्विकार दृक्स्वरूप भानात्मक भासकके उपलम्भमें कार्यपरम्पराको परम कारणमें और परम कारणको भी कार्यकारणातीत तत्त्वमें विलीन या बाधित कर देनेपर अशेष विशेषातीत वस्तुको पा लेनेमें कठिनाई नहीं है, तथापि भगवत्कृपाके बिना मिथ्या विश्वसे अभिनिवेश नहीं छूटता—

वदन्ति चैतत् कवयः स्म नश्वरं
पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः।
तथापि मुह्यन्ति तवाजमायया
सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम्॥

अर्थात् क्रान्तदर्शी लोग विश्वको विनश्वर बतलाते हैं, अध्यात्मविद् विद्वान् विश्वकी विनश्वरताका अनुभव भी करते हैं, तथापि आपकी मायासे मोहित हो जाते हैं, ऐसे विस्मयजनक कृत्यवाले अज अव्ययात्मा आपको नमस्कार है। इस श्वान, शृगाल, गृध्र, काकादि पिशिताशियोंके (कच्चा मांस आदि अभक्ष्य करनेवालोंके) भक्ष्य, अस्थि, मांस, चर्ममय पंजर, मूत्र-पुरीष-भाण्डागार, मायामय क्षणभंगुर बुद्‌बुदोपम देहसे उन्हीं लोगोंकी अहंता-ममता छूटती है और वे ही लोग दुस्तरा गुणमयी, मायाको पार कर सकते हैं, जिन्होंने निष्कपटभावसे सर्वात्मना भगवान्‌के श्रीचरणोंका सहारा लेकर उनकी दयादृष्टिको प्राप्त कर लिया है—

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
ते दुस्तरामिति तरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये॥

अन्यथा अविवेक, अज्ञानसे प्रत्यक्ष सिद्ध करतलस्थित आमलकके समान अत्यन्त अपरोक्ष-सर्वात्मभाव भी परोक्ष या असत्कल्प हो जाता है और फिर प्राणी आध्यात्मिकता, आधिदैविकताको भूलकर केवल आधिभौतिक वैषयिक

भोग-विलासोंके किंकर बनकर आसक्ति, असंतोष, विद्वेष आदि आसुर भावोंसे ग्रस्त होकर परस्पर एक दूसरेके संहारक बन जाते हैं। इसीलिये संतोंने सर्वदा ही भगवत्कृपाकी प्रतीक्षाको मुख्य माना है, अपने और विश्वके कल्याणके लिये प्रभुमें चित्तको—निष्काम मतिको जोड़ना ही मुख्य पुरुषार्थ माना है। सम्पूर्ण प्राप्तव्य तत्त्वोंकी प्राप्ति इतनेसे ही सम्पन्न हो जाती है। भगवान्के श्रीचरणोंमें अहैतुकी मतिवाले नैष्ठिक भक्त सम्पूर्ण विश्वको, सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मवत् भगवत्स्वरूप ही देखते हैं। वे खलोंका भी अहित न चाहकर हित ही चाहते हैं। उनके स्वार्थ-परमार्थमें अन्तर नहीं रह जाता। जब प्राणी आत्मसम्बन्धी पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, कलत्र, मित्र, क्षेत्र, वित्त आदि अत्यन्त अनात्माको भी प्रेमास्पद बनाकर उनका हित चाहता है, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण आदिमें अतिशय प्रेम करता है, तब फिर जब सम्पूर्ण जगत् एवं उसके प्राणियोंको परमात्मस्वरूप निजात्म-रूप ही समझ लेगा, तब उसका विश्व-सुहृद् होना उचित ही है। श्रीप्रह्लादजी कहते हैं कि हे अधोक्षज! विश्वका कल्याण हो, खलोंके मनमें भी प्रसाद हो, उनकी भी उग्रता मिटे, प्राणी एक दूसरेका कल्याण चाहने लगें, मन अशास्त्रीय, अभद्र वस्तुओंका चिन्तन छोड़कर भद्र चिन्तनमें निरत हों, हम सबकी अहैतुकी मति आपमें प्रतिष्ठित हो—

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

गृह, पुत्र, वित्त, बन्धुओंमें मेरा संग (आसक्ति) न हो, यदि संग हो तो भगवत्प्रेमियों, संतोंमें ही हो। प्राणयात्रामात्रसे संतुष्ट, अन्तर्मुख प्राणी अत्यन्त शीघ्रतासे जिस सिद्धिको प्राप्त करता है, इन्द्रियप्रिय प्राणियोंको वह स्वप्नमें भी सुलभ नहीं है। जिन हेतुओंसे भगवान्में चित्त अनुरक्त हो, उन्हींसे विश्वका अपना लौकिक-पारलौकिक पुरुषार्थ सिद्ध होता है। श्रीहरिके चरणोंमें जिसकी भक्ति होती है, सम्पूर्ण देवता सर्वगुणोंके साथ उसीमें आकर निवास करते हैं। जो हरिके अनुरागी नहीं, नाना मनोरथोंसे बाह्य विषयमें भटकते हैं, उनमें कहाँ देवता, कहाँ गुण?—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥

श्रीलक्ष्मीजीने कहा कि हे देव! जो आपके श्रीचरणोंकी पूजा करती है, वही अखिल अभीष्टों और कामको चाहती है। जिस वस्तुको न पाकर दूसरी नारी भग्नयाच्ञा (याचना विफल होनेसे निराश) होकर संतप्त होती है, उसी अभीष्ट वस्तुको वह नारी अनायास ही प्राप्त कर लेती है, जो आपको चाहती और पूजती है—

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो
यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते॥

हे मायेश! हे देव! मेरी प्राप्तिके लिये फलेच्छु देवता और असुर सभी लोग उग्र तप करते हैं, परंतु आपके श्रीचरणपरायण हुए बिना कोई भी मुझे पा नहीं सकता, क्योंकि मैं तो सदा त्वद्धृदया ही हूँ—आपमें ही मेरा हृदय सदा रहता है, अतः आपको छोड़कर मैं कहीं क्षणभरके लिये भी नहीं जा सकती। ऐसी स्थितिमें जिसके यहाँ आप हैं, वहाँ मेरा रहना अनायास ही सिद्ध हो जाता है—

मत्प्राप्तयेऽजेश सुरासुरादय-
स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां
विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित॥

इस तरह अनेक प्रयोजनोंकी सिद्धि अभीष्ट हो तो भी हरिका आश्रयण आवश्यक है। वस्तुतस्तु भगवान् प्राणिमात्रके अन्तरात्मा हैं, अतएव निरतिशय एवं निरुपाधिक प्रेमके आस्पद हैं। जैसे झषों (मछली आदि)-को जल अभीष्ट होता है, वैसे ही प्राणिमात्रको निरुपाधिक प्रेमास्पद-रूपसे भगवान् इष्ट हैं—'**हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।**' सारांश यही है कि श्रीहरिकृपासे ही प्राणियोंमें शुभ भावनाओंकी दृढ़ता होती है, शुभ भावनाओंके दृढ़ होनेपर ही स्थिर विवेक, विज्ञान, प्राणिमात्रके प्रति भगवद्भाव जाग्रत् होता है। यह भगवद्भाव उसीको

प्राप्त होता है, जो भगवान्‌की शरण होता है। उनकी प्राप्तिमें कोई शील, तोष, बुद्धि आदि हेतु नहीं। भगवान्‌के तोषका हेतु उच्चकुलमें जन्म, सौभाग्य, मनोहर वाक्, दिव्य बुद्धि, सुन्दर आकृति आदि नहीं, क्योंकि इन सब गुणोंसे रहित भी बंदरोंको भगवान्‌ने अपना सखा बनाया—

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥

श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं कि जब सर्वगुणविहीन बंदर—जिसके नामसे रोटी मिलनेमें भी बाधा उपस्थित हो सकती है—उस सर्वविधहीनको भी सजल-नयन होकर गुणग्राम सुननेसे प्रभुने अपना लिया, तब फिर औरोंकी तो बात ही क्या है?

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

जो ऐसे प्रभुको समझ-बूझकर भी भूल जायँ, फिर वे क्यों न दुःखी हों—

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥

जो प्राणी मनुष्य-शरीर पाकर भी भगवत्कृपासम्पादनपूर्वक भगवत्प्राप्तिके लिये भगवदाश्रयण नहीं करते, वे मायामय प्रलोभनोंमें फँसकर बार-बार बंदरोंके समान बन्धनको प्राप्त होते हैं—

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो
ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम्।
न वै यतेरन्न पुनर्भवाय ते
भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम्॥

श्रीबालकृष्णके ध्यानसे सर्वविपत्तियोंका नाश तथा भगवान्‌के दर्शन

बालं नवीनशतपत्रविशालनेत्रं बिम्बाधरं सजलमेघरुचिं मनोज्ञम्।
मन्दस्मितं मधुरसुन्दरमन्दयानं श्रीनन्दनन्दनमहं मनसा नमामि॥
मञ्जीरनूपुररणन्नवरत्नकाञ्चीश्रीहारकेसरिनखावलियन्त्रसंघम्।
दृष्ट्यार्तिहारिमषिबिन्दुविराजमानं वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम्॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखोपरि कुञ्चिताग्राः केशा नवीनघननीलनिभाः स्फुरन्तः।
राजन्त आनतशिरःकुमुदस्य यस्य नन्दात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते॥
श्रीनन्दनन्दनस्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तन्नेत्रगोचरं याति सानन्दो नन्दनन्दनः॥

'श्रीनन्दनन्दनके नेत्र नवीन कमलके समान विशाल हैं, पके हुए बिम्बफलके समान लाल-लाल ओठ हैं, जलसे भरे हुए मेघकी-सी अङ्ग-कान्ति है। मन्द-मन्द मुसकराते हुए वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। उनकी धीमी-धीमी चाल भी अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर है, उन बालगोपालको मैं मनसे प्रणाम करता हूँ। उनके चरणोंमें पायजेब और नूपुर सुशोभित हैं। नवीन रत्ननिर्मित करधनी खन-खन शब्द कर रही है। वक्षःस्थलपर सुनहरी रेखाके रूपमें लक्ष्मीजी मुक्ताहार, बघनखोंकी पंक्ति तथा यन्त्रोंका समूह शोभा दे रहा है। ललाटपर दृष्टिदोषजनित पीड़ाका निवारण करनेवाला काजलका डिठौना विशेष सुन्दर लग रहा है। कलिन्दतनया श्रीयमुनाजीके तटपर बालोचित क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। नीचेकी ओर झुका हुआ जिनका शिरोभाग प्रफुल्ल कुमुदकी-सी शोभा धारण करता है, पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित परम सुन्दर श्रीमुखपर नवीन मेघके समान नीले रंगकी घुँघरारी अलकें लहरा रही हैं। बलदाऊ भैयाके सहित उन नन्दके लाडले! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है।'

प्रातःकाल उठकर जो इस नन्दनन्दन-स्तोत्रका पाठ करता है, आनन्दमूर्ति श्रीनन्दनन्दन उसके नेत्रोंके आगे नाचने लगते हैं।

सत्कथाका महत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'सत्' उसे कहते हैं जो सदा है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, जो नित्य सत्य चिदानन्दस्वरूप है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—चारों अवस्थाओंमें सम एवं एकरूप है, जो सबका आश्रय, ज्ञाता, प्रकाशक और आधार है, श्रुतियाँ **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** आदि कहकर जिसका संकेत करती हैं और जो एकमात्र चैतन्यघन होनेपर भी अनेक रूपोंमें दिखायी पड़ता है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(२। १६)

जो 'असत्' है, उसका कभी अस्तित्व नहीं है और जो 'सत्' है उसका कभी अभाव नहीं है। अर्थात् वह सदा सर्वत्र है। सब कुछ उसीमें है, वही सबमें समाया है। यह 'सत्' ही परमात्मा—परात्पर ब्रह्म है। यथार्थमें इस 'सत्' की उपलब्धि ही मानव-जीवनका प्रधान ही नहीं, एकमात्र लक्ष्य है। इसीके लिये भगवान् दया करके जीवको मनुष्य-योनिमें भेजते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

जो मनुष्य नरदेहका यह वास्तविक लाभ न उठाकर पशु या पिशाचवत् भोगोंके उपार्जन और उनके भोगमें ही लगा रहता है, उसका मानवजन्म व्यर्थ जाता है। केवल व्यर्थ ही नहीं जाता, भोगकामनासे मनुष्यका विवेक ढक जाता है और वह भोगोंकी प्राप्तिके लिये अनेक पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होकर मानव-जीवनको असुर-जीवनमें परिणत कर डालता है, जिसका बहुत बुरा परिणाम होता है। भगवान्ने कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। २०)

'कौन्तेय! वे मूढ़लोग मुझको (भगवान्को) तो प्राप्त होते ही नहीं, जन्म-जन्ममें आसुरी योनिमें जाते हैं और फिर उससे भी अति नीच गति (घोर नरकों)-को प्राप्त होते हैं।'

इसलिये मनुष्यका यही एकमात्र कर्तव्य या परम धर्म होता है कि वह लोक-परलोकके कल्याण तथा मानव-जीवनके परम साध्य परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही सब कार्य करके अपने जीवनको सफल करे। विषयभोगोंको इस जीवनका लक्ष्य समझकर उन्हींको प्राप्त करनेमें जीवन लगाना तो अमृत देकर बदलेमें जहर लेना है। भगवान् श्रीरामचन्द्रने कहा है—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

वे आगे चलकर कहते हैं कि इस प्रकारकी दुर्लभ सुविधा पाकर भी जो भवसागरसे नहीं तरता, वह आत्महत्यारेकी गतिको प्राप्त होता है—

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

यही बात श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें कही गयी है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

(११। २०। १७)

श्रुति कहती है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोपनिषद् २। ५)

'यदि इस मनुष्य-शरीरमें परमात्मतत्त्वको जान लिया जायगा तो सत्य है—(सत्यकी उपलब्धिसे मानव-जीवनकी सार्थकता है) और यदि इस जन्ममें उसको नहीं जाना तो महान् हानि है। धीर पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माका चिन्तन कर—परमात्माको समझकर इस देहका त्याग करके अमृतको प्राप्त होते हैं, अर्थात् इस देहसे प्राणोंके निकल जानेपर वे अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।'

इस 'सत्'-स्वरूप चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिके जितने साधन हैं या परमात्माको प्राप्त महापुरुषमें अथवा परमात्मप्राप्तिके साधनमें लगे हुए सच्चे साधकमें जिन-जिन

गुणों और क्रियाओंका प्रकाश और विकास देखा जाता है, वे सब भी 'सत्' ही हैं। इसीसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

(१७। २६-२७)

'सत्' इस (परमात्माके नाम)-का सद्भावमें और साधुभावमें प्रयोग किया जाता है तथा अर्जुन! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है और यज्ञ, तप तथा दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' है—ऐसा कहा जाता है एवं उस परमात्माके लिये किया गया (प्रत्येक) कर्म ही सत् है—ऐसा कहा जाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा या भगवान् भी 'सत्' है तथा उस सत्के साधन तथा सत्यके प्राप्त होनेपर स्वभावतः ही सत्पुरुषमें दीखनेवाले गुण भी 'सत्' हैं—अर्थात् सद्गुण, सद्भाव, सद्विचार, सदाचार, सद्व्यवहार, सत्यभाषण, सत्-आहार और सद्विहार—जो कुछ भी भगवान्‌के प्राप्त्यर्थ, प्रीत्यर्थ या सहज दैवीगुणरूपमें विकसित भाव-विचार-गुण-कर्म आदि हैं, सभी 'सत्' हैं और ये जिसके जीवनमें प्रत्यक्ष प्रकट हैं, वे ही 'सत्पुरुष' हैं। ऐसे सत्पुरुषोंका या उनके सदाचारों तथा सद्विचारोंका संग ही सत्संग है। इस प्रकारके सत्संगमें ही वास्तविक 'सत्कथा'—हरिकथा प्राप्त होती है, उससे मोहका नाश (भोगपदार्थोंमें—इहलोक तथा परलोकके प्राणिपदार्थोंमें सुख-बोधरूप मोहका नाश) होकर भगवच्चरणोंमें दृढ़ प्रेमकी प्राप्ति होती है—

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

हरिकथा ही 'सत्कथा' है। जिसमें श्रीहरिके पवित्र लीलाचरित्रोंका गान हो, अथवा जो भगवान् श्रीहरिकी ओर ले जानेवाले सफल साधन बताती हो, वह 'सत्कथा' है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ४०)

'जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार होना चाहते हैं अथवा जो भाँति-भाँतिके दुःखदावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथा-रसका सेवन करनेके सिवा और कोई साधन नहीं है, कोई नौका नहीं है। केवल लीला-कथा-रसायनका सेवन करके ही वे अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।'

हरिकथाको छोड़कर और सभी कथाएँ असत् हैं तथा त्याज्य हैं। श्रीमद्भागवतके अन्तमें श्रीसूतजी महाराजने कहा है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते॥

(श्रीमद्भा० १२। १२। ४८-४९)

'जिस वाणीके द्वारा घटघटवासी भगवान्‌के नाम-गुण-लीलाका कथन नहीं होता, वह भावयुक्त होनेपर भी व्यर्थ—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और वस्तुतः वह 'असत्-कथा' है। जो वचन भगवान्‌के गुणोंसे पूर्ण रहते हैं, वे ही परम पवित्र हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवान्‌के परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, परम रुचिर और प्रतिक्षण नया-नया लगता है, वही अनन्त कालतक मनके लिये परम महोत्सवरूप है। वह मनुष्यके शोकरूपी गहरे समुद्रको सुखा देनेवाला है।'

जहाँ 'सत्कथा' होती है वहाँ उसके प्रभावसे प्राणि-मात्रमें परस्पर प्रेम हो जाता है। वहाँ लोग वैर छोड़कर सुखी हो जाते हैं। प्रचेतागण भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः।
निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन॥
यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान् न्यासिनां गतिः।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसंगैः पुनः पुनः॥

(श्रीमद्भा० ४। ३०। ३५-३६)

'जहाँ (भगवद्भक्तोंमें) सदा भगवान्‌की दिव्य कथा

होती रहती है, जिनके श्रवणमात्रसे भोगतृष्णा सर्वथा शान्त हो जाती है। प्राणिमात्र परस्पर निर्वैर हो जाते हैं और उनमें कोई उद्वेग नहीं रहता। सत्कथाओंके द्वारा अनासक्त-भावसे महान् त्यागियोंके एकमात्र आश्रय साक्षात् भगवान् श्रीनारायणका बार-बार गुण-गान होता रहता है।'

जिन लोगोंको सत्कथा-सुधाका स्वाद मिल जाता है, तो फिर वे उसे पीते ही रहना चाहते हैं, कभी तृप्त होते ही नहीं। विदेहराज निमिने योगीश्वरोंसे प्रार्थना की है—

नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम्।
संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम्॥

(श्रीमद्भा० ११। ३। २)

'मैं मृत्युका शिकार और संसारके तापोंसे संतप्त हूँ। आपलोग मुझे जिस हरि-कथा-अमृतका पान करा रहे हैं, वह इन तापोंको नष्ट करनेकी एकमात्र औषधि है, इसलिये आपकी वाणीका सेवन करते-करते मैं तृप्त नहीं होता।'

सत्कथ-सुधाके परम पिपासु भक्तराज ध्रुव सत्संगकी चाह करते हुए भगवान्से बोले—

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसंगो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥

(श्रीमद्भा० ४। ९। ११)

'अनन्त परमात्मन्! जिनकी आपमें अविच्छिन्न भक्ति है, उन निर्मलहृदय महापुरुष भक्तोंका मुझे संग दीजिये। उनके संगसे आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर मैं उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही अनेक दुःखोंसे पूर्ण इस भयंकर भव-सागरसे उस पार पहुँच जाऊँगा।'

परम सौभाग्यमयी श्रीगोपाङ्गनाएँ जो भगवत्कथा-सुधा-रसकी रसिका ही ठहरीं, उनके समान इस रससुधाका अनुभव किसने किया है—प्रेममतवाली वे गोपियाँ बड़े ही करुण-मधुर स्वरमें गाती हैं—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। ९)

'श्यामसुन्दर! तुम्हारी कथा-सुधा (तुम्हारे विरहसे) संतप्त पुरुषोंके लिये जीवनरूप है, ज्ञानी महात्माओंके द्वारा उसका गान किया गया है। वह सारे पाप-तापोंको मिटानेवाली है, श्रवण-मात्रसे मङ्गल करनेवाली है, परम मधुर और परम सुन्दर तथा विस्तृत है। जो तुम्हारी लीला-कथाका गान करते हैं, वे ही वास्तवमें पृथ्वीमें सबसे बड़े दाता हैं।'

महात्मा मुनि मैत्रेयजी तो कथा-सुधा-पान न करनेवालोंको मनुष्य ही नहीं मानते? वे विदुरजीसे कहते हैं—

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्
पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-
महो विरज्येत विना नरेतरम्॥

(श्रीमद्भा० ३। १३। ५०)

'अरे, संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार—असली मानव-पुरुषार्थका रहस्य जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो आवागमनरूपी भवसे छुड़ा देनेवाली भगवान्की प्राचीन कथाओंमेंसे किसी भी कथासुधाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उसकी ओरसे मन हटा लेगा?'

श्रीगोस्वामीजी महाराज सत्कथा (रामकथा)-के महत्त्वका वर्णन करते हुए कहते हैं—

महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥
रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥
रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥

सत्कथासे ही मनुष्यको अपनी भूलोंका पता लगता है और भवाटवीसे निकलकर सच्चे सुखकी प्राप्तिका सन्मार्ग, उसका पाथेय, प्रकाश और सहायक शुभ संग प्राप्त होता है। सत्कथाओंमें भी जो प्रभाव उपदेशका पड़ता है, उससे बहुत ही अधिक घटनाप्रसंगोंका पड़ता है। विषय-वासना, भोग-

कामना, कामोपभोगपरायणता, भोगार्थ दुष्कर्ममें प्रवृत्ति, अन्यायसे अर्थोपार्जनकी वृत्ति आदि सभी दोषोंको मिटाकर जो आत्महित, लोकहितके साथ-साथ भगवत्प्रीतिसम्पादनमें सहायक और प्रेरक हो, जिससे दैवी सम्पत्तिके गुणोंका विकास तथा संवर्धन होता हो, ऐसी घटनाओंका श्रवण, कथन, मनन ही 'सत्कथा' का सेवन है।

इसके विपरीत जिन कथाओंसे आसुरीसम्पदाके दुर्गुण, दुर्विचार, दुराचार आदिका विकास तथा संवर्धन होता हो—जिनसे हिंसा, असत्य, स्तेय, दम्भ, दर्प, अभिमान, मद, द्वेष, वैर, क्रोध, काम, लोभ, छल, कपट, कायरता, असहिष्णुता, मन-इन्द्रियोंकी गुलामी, व्यभिचार, तृष्णा, ईश्वर तथा धर्ममें अविश्वास, दोष-दर्शनकी वृत्ति, निन्दा-चुगलीमें प्रीति, मिथ्या प्रशंसाकी इच्छा, शरीरके अत्यन्त आरामकी भावना आदि दोष उत्पन्न होते हों, उभड़ते हों, बढ़ते हों, फैलते हों—वह असत्कथा है। उससे सदा दूर रहना चाहिये।

असत् मानव-चरित्रोंका तथा असत् घटनाओंका भूलकर भी कभी श्रवण, पठन, कथन, स्मरण नहीं करना चाहिये। जैसे सत्पुरुषोंके सत्-चरित्र और सत्-घटना आदिसे चरित्रनिर्माणमें प्रेरणा, सहायता तथा आदर्शकी प्राप्ति होती है, ठीक इसके विपरीत असत्-चरित्र तथा घटनाओंसे चरित्रनाश होता है। इसीलिये असत्-साहित्यका प्रकाशन और प्रचार-प्रसार संसारके लिये हानिकर माना गया है। इसीलिये शास्त्र तथा सत्पुरुष बार-बार सावधान करते हुए सब प्रकारके दुःसंगका त्याग करनेके लिये प्रेरणा देते हैं। स्खलन अथवा पतन बहुत शीघ्र होता है, पैर जरा-सा फिसला कि आदमी गिरा। परंतु फिसलाहटसे बचनेमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है और चढ़नेके लिये तो परिश्रम या प्रयास भी करना पड़ता है। 'असत्-कथा' मानव-जीवनका पतन करनेके लिये बहुत बड़ी फिसलाहट है। इसलिये 'असत्-कथा' से सदा बचकर 'सत्कथा' का ही सेवन करना चाहिये।

धर्म-समन्वित शिक्षासे ही राष्ट्र-कल्याण सम्भव

(आचार्य श्रीनिवासजी तिवारी 'मधुकर', साहित्याचार्य, स्नातक-प्रतिष्ठा, बी०एड्०, रिसर्च स्कॉलर)

धर्म अर्थात् अध्यात्म भारतीय राष्ट्रका प्राणतत्त्व है। धर्म ही हमारे राष्ट्रका जीवन-प्रवाह है। धर्म ही आर्यसंस्कृतिका मूल आधार है। धर्म ही जीवनके समग्र उत्कर्षका मूल स्रोत है—'**धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्**'। धर्मसे संस्कृति बनती है और संस्कृति ही शिक्षाको सँवारती एवं सजाती है तथा धर्म-समन्वित संस्कृतिपर आधारित शिक्षा ही राष्ट्रके नागरिकोंका चरित्र-गठन करती है और चरित्रवान् नागरिक ही राष्ट्रकी चतुर्दिक् अभ्युन्नतिमें सहायक होते हैं। आज हमारे भारतमें ऐसी शिक्षाकी आवश्यकता है, जो विद्वान्के साथ-साथ चरित्रवान् मानव भी पैदा कर सके और यह तभी सम्भव होगा जब शिक्षाकी बागडोर धर्मके हाथमें हो। वस्तुतः धर्म-समन्वित शिक्षा ही ऐसे चरित्र-नायकोंका सृजन कर सकती है जो राष्ट्रहितमें व्यापक एवं उदारदृष्टि रखते हों।

जिन दिनों भारतकी शिक्षा धर्म-समन्वित संस्कृतिपर आधारित थी, उन दिनों भारत धरतीका स्वर्ग, आध्यात्मिक गुरुके रूपमें विश्वका प्रवीण पथ-प्रदर्शक, गौरवमयी ज्ञानगरिमा एवं विचार-महिमासे युक्त विश्वगुरुके आदर्श आसनपर समासीन था। इसी महानता एवं पवित्रताके कारण ही विष्णुपुराणमें भारतभूमिको स्वर्ग और अपवर्गका दिव्य प्राङ्गण कहा गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

किंतु आज भौतिक विकासवादकी दौड़में पाश्चात्य-सभ्यतामें आकण्ठ-निमग्न हो जानेके कारण आधुनिक शिक्षासे धर्मका प्रायः लोप हो गया है। आज भारतकी दशा धर्म-समन्वित शिक्षायुक्त प्राचीन भारतके ठीक विपरीत हो गयी है। यह विडम्बना ही है कि जगद्गुरु कहलानेवाले भारतमें आज अधार्मिकता, अशान्ति, अनाचार, पापाचार, दुराचारका दुर्दम दानव दहाड़ रहा है। देशका मेरुदण्ड

(युवावर्ग) चरित्रहीन हो राष्ट्रकी चिन्ता छोड़ विलासिताके पंकपयोधिमें आकण्ठ डूबा हुआ है। देशका प्रशासक वर्ग राष्ट्रसे अधिक महत्त्व स्वयंकी स्वार्थपरक सत्ताको दे रहा है। संकीर्ण दृष्टिके कारण देशके अधिकांश लोगोंकी सोच केवल अर्थतक ही सीमित हो गयी है। लोगोंके चरित्रमें इतना अधिक ह्रास हुआ है कि उनमें धर्म और ईश्वरका कोई भय ही नहीं रह गया है।

श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर और गाँधीके देशमें आज गोहत्या, मद्य-पान तथा नशाखोरीकी प्रवृत्ति अबाधगतिसे बढ़ती जा रही है और इसीमें लोग गौरवका अनुभव कर रहे हैं। इन पतनोन्मुख कर्मोंके कारण मानवताकी चीख—पुकारसे कर्ण-कुहर फूटे जा रहे हैं। आजके धर्मनिरपेक्ष भारतमें श्रीराम-जैसा मानव, चरित्रवान् एवं बलवान् राष्ट्रभक्त कोई दूसरा दिखलायी नहीं देता। राष्ट्रवासी अगर समय रहते नहीं चेतेंगे तो ऋषियों एवं संतोंके इस पावन देशकी जो बाकी दुर्दशा होनी बची है, वह भी दूर नहीं है। संकटकी इस विषम परिस्थितिमें देशमें शाश्वत शान्ति एवं सतत एकताकी स्थापनाका मधुमय मार्ग यदि कोई प्रशस्त कर सकता है तो वह है धर्म-समन्वित आदर्श शिक्षा। सत्-शिक्षासे ही सद्बुद्धि, सद्बुद्धिसे ही सदिच्छा और सदिच्छासे ही सत्प्रयत्न तथा सत्फल सम्भव होगा। धर्म-समन्वित शिक्षाका पवित्रतम प्रकाश ही राष्ट्रवासियोंके अन्तःकरणमें मानवताकी ज्योति जलाकर प्रेम, दया, करुणा, मैत्री एवं श्रद्धाके सरस स्रोतको प्रवाहित कर सकता है। धर्म ही एक ऐसा तत्त्व है जो इस समय हमें संकटसे उबार सकता है।

धर्माचरण गिरे हुए, गिरते हुए तथा गिरनेवाले मनुष्योंको अवनतिमार्गसे बचाकर उन्नतिकी ओर ले जानेकी शक्ति धारण करता है। व्यष्टि-समष्टि, सृष्टि एवं परमेष्टिमें जो सामञ्जस्य स्थापित कर दे वही धर्म है। देवभूमि भारतवर्ष धर्म-दर्शन, आचारशास्त्र, मधुरता, कोमलता और प्रेमकी पुण्यभूमि है। इस तरह धर्म भारतका प्राण है। धर्मरूपी प्राण-शक्तिके अभावमें शिवस्वरूप हमारा राष्ट्र शवके समान हो जायगा। शिक्षामें धर्मका ह्रास होनेसे शिक्षार्थियोंमें नैतिक पतनका होना निश्चित है। धर्म-विहीन शिक्षा राष्ट्रको अनुशासनहीन बनाकर महापतनके गर्तमें गिरा देती है। धर्मयुक्त शिक्षाका आदर्श होता है—सबका कल्याण, सबकी उन्नति—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

इसके विपरीत अधार्मिक शिक्षाका लक्ष्य है—सबका सतत विनाश। धर्म-समन्वित शिक्षासे शिक्षित होनेके कारण ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने धर्ममय रामराज्यकी स्थापना की—'**रामो वै विग्रहवान् धर्मः।**' इसके ठीक विपरीत रावणने धर्मविहीन शिक्षाको प्राप्त करनेके फलस्वरूप चरित्रहीन होकर पूरे राष्ट्रका विनाश कर डाला।

धर्म-आधारित शिक्षा ही वह आलोकपुञ्ज है जो मानवकी अन्तरात्माको प्रकाशित करता है और वही अपने अलौकिक प्रकाश-पुञ्जके बलपर अशान्त विश्वमें शान्तिकी स्थापना, मानवताकी रक्षा एवं समाज तथा राष्ट्रकी सुरक्षा कर सकता है। धर्मयुक्त शिक्षा ही वह दिव्यतम ज्योति है जो मानवकी अन्तरात्माको ज्योतित करती हुई उसमें पूर्ण मानवताको प्रतिष्ठित करती है। जीवन अमृतमय, आनन्दमय हो जाता है। कहा भी गया है—'**अमृतं हि विद्या**', '**विद्ययाऽमृतमश्नुते**'। भारतीय ऋषियोंकी दृष्टिमें विद्या वही है जो अज्ञानके बन्धनसे जीवको विमुक्त कर दे—'**सा विद्या या विमुक्तये**'।

जिससे चरित्र-निर्माण नहीं हो सकता वह शिक्षा नहीं हो सकती। चरित्र मानव-जीवनका मुकुटमणि होता है। चरित्र-निर्माण ही समाज-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माणकी आधारशिला है। चरित्रवान् नागरिक ही राष्ट्रिय एकताकी सुरक्षा एवं शान्तिकी स्थापना कर सकता है। आधुनिक शिक्षामें चरित्र-निर्मातृ-तत्त्व धर्मका अभाव है। अस्तु, भारतीय शिक्षाविदों एवं देशके कर्णधारोंको चाहिये कि देशकी शिक्षाको चरित्र-निर्मातृ-तत्त्व-धर्मसे युक्त करें। तभी देशकी जनता चरित्रवान् बनेगी और देशकी अखण्डताकी रक्षा एवं शक्तिकी स्थापनामें योगदान कर सकेगी।

हमारे भारतकी मूल चेतना आध्यात्मिक है। अध्यात्म भारतके कण-कणमें समाहित है। यह भारतका प्राण, राष्ट्रका ओज, जीवन-दर्शन एवं नैतिक प्रेरणाका सनातन स्रोत है। भारतकी आत्मा धर्ममें ही निवास करती है। जीवनमें सच्ची विजय भी धर्मसे ही मिलती है—'**यतो धर्मस्ततो जयः**'।
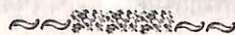
साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गौकी महिमा

**गवां हि तीर्थे वसतीह गङ्गा
पुष्टिस्तथा तद्रजसि प्रवृद्धा।
लक्ष्मीः करीषे प्रणतौ च धर्म-
स्तासां प्रणामं सततं च कुर्यात्॥**

(विष्णुधर्मोत्तर० २। ४२। ५८)

'गौ-रूपी तीर्थमें गङ्गा आदि सभी नदियों तथा तीर्थोंका आवास है, उसकी परम पावन धूलिमें पुष्टि विद्यमान है, उसके गोबरमें साक्षात् लक्ष्मी विराजमान है और उसे प्रणाम करनेसे धर्म सम्पन्न हो जाता है। अतः गोमाता सदा-सर्वदा प्रणाम करने योग्य है।'

**गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।
गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किञ्चित् परं स्मृतम्॥**

(महाभारत, अनु० ५१। ३३)

'गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, गौएँ स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं, गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है।'

**पितरो वृषभा ज्ञेया गावो लोकस्य मातरः।
तासां तु पूजया राजन् पूजिताः पितृदेवताः॥**

(महाभारत, आश्व० वैष्णव०)

'राजन्! बैलोंको जगत्‌का पिता समझना चाहिये और गौएँ संसारकी माता हैं। उनकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण पितरों और देवताओंकी पूजा हो जाती है।'

**सभा प्रपा गृहाश्चापि देवतायतनानि च।
शुद्ध्यन्ति शकृता यासां किं भूतमधिकं ततः॥**

(महाभारत, आश्व० वैष्णव०)

'जिनके गोबरसे लीपनेपर सभा-भवन, पौंसले, घर और देवमन्दिर भी शुद्ध हो जाते हैं, उन गौओंसे बढ़कर और कौन प्राणी हो सकता है?'

गाय सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है

**कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव।
गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्॥**

(महाभारत, अनु० ५१। २७)

'वीर नरेश! गायोंके नाम और गुणोंका कीर्तन तथा श्रवण करना, गायोंका दान देना और उनका दर्शन करना बहुत प्रशंसनीय समझा जाता है और इनसे सम्पूर्ण पापोंका नाश तथा परम कल्याणकी प्राप्ति होती है।'

**निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥**

(महाभारत, अनु० ५१। ३२)

'गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, उस स्थानकी शोभा बढ़ा देता है और वहाँके सारे पापोंको खींच लेता है।'

**गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः।
अतो मर्त्यः प्रपुष्टैस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
गवां रजः खुरोद्धूतं शिरसा यस्तु धारयेत्।
स च तीर्थजले स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥**

(पद्मपुराण, सृष्टि० ५७। १६४-१६५)

'जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूलिको सिरपर धारण करता है, वह मानो तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है।'

**स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं
संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्।
ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित्॥**

(बृहत्पराशरस्मृति)

'स्पर्श कर लेनेमात्रसे ही गौएँ मनुष्यके समस्त पापोंको नष्ट कर देती हैं और आदरपूर्वक सेवन किये जानेपर अपार सम्पत्ति प्रदान करती हैं। वे ही गायें दान दिये जानेपर सीधे स्वर्ग ले जाती हैं। ऐसी गौओंके समान और कोई भी धन नहीं है।'

गोचर-भूमि छोड़नेकी महिमा

**गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्यजति हेतुना।
दिने दिने ब्रह्मभोज्यं पुण्यं तस्य शताधिकम्॥**

तस्माद्गवां प्रचारं तु मुक्त्वा स्वर्गान्न हीयते।
यश्छिनत्ति द्रुमं पुण्यं गोप्रचारं छिनत्त्यपि॥
तस्यैकविंशपुरुषाः पच्यन्ते रौरवेषु च।
गोचारघ्नं ग्रामगोपः शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ५९। ३८—४०)

'जो मनुष्य गौओंके लिये यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़ता है, उसको प्रतिदिन सौसे अधिक ब्राह्मण-भोजनका पुण्य प्राप्त होता है। गोचरभूमि छोड़नेवाला कोई भी मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। जो मनुष्य गोचरभूमिको रोक लेता है और पवित्र वृक्षोंको काट डालता है, उसकी इक्कीस पीढ़ी रौरव नरकमें गिरती है। जो व्यक्ति गौओंके चरनेमें बाधा देता है, समर्थ ग्रामरक्षकको चाहिये कि उसे दण्ड दे।'

तासां प्रचारभूमिं तु कृत्वा प्राप्नोति मानवः।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥

(विष्णुधर्मोत्तर० खण्ड ३, अ० २९१)

'गौओंके चरनेके लिये गोचरभूमिकी व्यवस्था करके मनुष्य निःसंदेह अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है।'

एकदा तु चरन्तीं गां वारयामास वै भवान्।
तेन पापविपाकेन निरयद्वारदर्शनम्॥

(पद्मपुराण, पाताल० ३१। ८)

'(यमराजने जनकसे कहा—) राजन्! एक बार तुमने चरती हुई गायके कार्यमें विघ्न डाला था, उसी पापके कारण तुम्हें नरकका द्वार देखना पड़ा।'

गायको चारा देनेकी महिमा

घासमुष्टिं परगवे दद्यात् संवत्सरं तु यः।
अकृत्वा स्वयमाहारं व्रतं तत् सार्वकामिकम्॥

(महाभारत, अनु० ६९। १२)

'जो एक वर्षतक प्रतिदिन स्वयं भोजनके पहले दूसरेकी गायको एक मुट्ठी घास खिलाता है, उसका वह व्रत सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।'

तृणोदकादिसंयुक्तं यः प्रदद्याद् गवाह्निकम्॥
सोऽश्वमेधसमं पुण्यं लभते नात्र संशयः।

(बृहत्पराशरस्मृति)

'जो गौओंको प्रतिदिन जल और तृणसहित भोजन प्रदान करता है, उसे अश्वमेधयज्ञके समान पुण्य प्राप्त होता है, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है।'

तीर्थस्थानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु सर्वदा॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षया च लभेन्नरः।
तत्पुण्यं लभते सद्यो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥

'तीर्थस्थानोंमें जानेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, सभी व्रत-उपवासों एवं तपस्याओंमें जो पुण्य है, महादान करनेमें जो पुण्य है, श्रीहरिके पूजनमें जो पुण्य है, पृथ्वीकी परिक्रमा करनेमें जो पुण्य है, वेदवाक्योंके पठन-पाठनमें जो पुण्य है और समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ग्रहण करनेमें जो पुण्य है, वे सभी पुण्य मनुष्यको केवल गायोंको तृण खिलानेमात्रसे तत्काल मिल जाते हैं।'

गौ-सेवाकी महिमा

गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्॥
द्रुह्येन्न मनसा वापि गोषु नित्यं सुखप्रदः।
अर्चयेत् सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत्॥
दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाश्नुते।

(महाभारत, अनु० ८१। ३३—३५)

'जो पुरुष गौओंकी सेवा और सब प्रकारसे उनका अनुगमन करता है, उसपर संतुष्ट होकर गौएँ उसे अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान करती हैं। गौओंके साथ मनसे भी कभी द्रोह न करे, उन्हें सदा सुख पहुँचाये, उनका यथोचित सत्कार करे और नमस्कार आदिके द्वारा उनका पूजन करता रहे। जो मनुष्य जितेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त होकर नित्य गौओंकी सेवा करता है, वह समृद्धिका भागी होता है।'

तासामौषधदानेन विरोगस्त्वभिजायते।
विप्रमोच्य भयेभ्यश्च न भयं विद्यते क्वचित्॥

(विष्णुधर्मोत्तर० खण्ड ३, अ० २९१)

'रुग्णावस्थामें गौओंको ओषधि प्रदान करनेसे मनुष्य स्वयं भी सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है। गौओंको भयसे मुक्त कर देनेपर मनुष्य स्वयं भी सभी भयोंसे मुक्त हो जाता है।'

गौ-भक्तके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं

गोषु भक्तश्च लभते यद् यदिच्छति मानवः।
स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च काममवाप्नुयुः॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात्।
धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्॥
विद्यार्थी चाप्नुयाद् विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात् सुखम्।
न किञ्चिद् दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत॥

(महाभारत, अनु० ८३। ५०—५२)

'गोभक्त मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे प्राप्त होती है। स्त्रियोंमें भी जो गौओंकी भक्त हैं, वे मनोवाञ्छित कामनाएँ प्राप्त कर लेती हैं। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाता है और कन्यार्थी कन्या। धन चाहनेवालेको धन और धर्म चाहनेवालेको धर्म प्राप्त होता है। विद्यार्थी विद्या पाता है और सुखार्थी सुख। भारत! गोभक्तके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है।'

गौओंको दुःख देनेका परिणाम

गावो देयाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वथा।
ताडयन्ति च ये पापा ये चाक्रोशन्ति ता नराः॥
नरकाग्नौ प्रपच्यन्ते गोनिःश्वासप्रपीडिताः।

(बृहत्पराशरस्मृति)

'गौओंका सदा दान करना चाहिये, सदा उनकी रक्षा करनी चाहिये और सदा उनका पालन-पोषण करना चाहिये। जो मूर्ख उन्हें डाँटते तथा मारते-पीटते हैं, वे गौओंके दुःखपूर्ण निःश्वाससे पीड़ित होकर घोर नरकाग्निमें पकाये जाते हैं।'

प्रचारे वा निवाते वा बुधो नोद्वेजयेत गाः।
तृषिता ह्यभिवीक्षन्त्यो नरं हन्युः सबान्धवम्॥

(महाभारत, अनु० ६९। १०)

'जब गौएँ स्वच्छन्दतापूर्वक विचर रही हों अथवा किसी उपद्रवशून्य स्थानमें बैठी हों, तब उन्हें पीड़ित नहीं करना चाहिये। यदि वे प्यासी होकर देखती हैं तो उत्पीड़कके सम्पूर्ण वंशको नष्ट कर देती हैं।'

गोकुलस्य तृषार्तस्य जलार्थे वसुधाधिप।
उत्पादयति यो विघ्नं तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥

(महाभारत, अनु० २४। ७)

'राजन्! जो प्याससे व्याकुल गायोंके जल पीनेमें विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये।'

गवां यो मनसा दुःखं वाञ्छत्यधमसत्तमः।
स याति निरयस्थानं यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥

(पद्मपुराण, पाताल० १९। ३४)

'जो नराधम मनमें भी गायोंको दुःख देनेकी इच्छा कर लेता है, उसे चौदह इन्द्रोंके कालतक नरकमें रहना पड़ता है।'

तस्माज्ज्ञात्वा हरिं निन्दन् गोषु दुःखं समाचरन्।
कदापि नरकान्मुक्तिं न प्राप्नोति नरेश्वर॥

(पद्मपुराण, पाताल० १९। ३६)

'राजन्! जो मनुष्य जान-बूझकर भगवान्‌की निन्दा करता है और गायोंको दुःख देता है, उसका नरकसे कभी छुटकारा नहीं हो सकता।'

गौरक्षाके लिये प्राण देनेकी महिमा

गोकृते स्त्रीकृते चैव गुरुविप्रकृतेऽपि वा।
हन्यन्ते ये तु राजेन्द्र शक्रलोकं व्रजन्ति ते॥

(महाभारत, आश्व० वैष्णव०)

'गोरक्षा, अबला स्त्रीकी रक्षा और गुरु तथा ब्राह्मणकी रक्षाके लिये जो प्राण दे देते हैं, राजेन्द्र युधिष्ठिर! वे मनुष्य इन्द्रलोक (स्वर्ग)-में जाते हैं।'

गौरक्षाके लिये शस्त्र धारण करनेकी आज्ञा

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वापि संकरे।
गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया॥

(बौधायनस्मृति)

'गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये और वर्णसंकरतासे प्रजाको बचानेके लिये ब्राह्मण और वैश्यको भी शस्त्र ग्रहण कर लेना चाहिये।'

गौहत्याका फल

घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते।
यावन्ति तस्या रोमाणि तावद् वर्षाणि मज्जति॥

(महाभारत, अनु० ७४। ४)

'गौकी हत्या करनेवाले, उसका मांस खानेवाले तथा गोहत्याका अनुमोदन करनेवाले लोग गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक नरकमें डूबे रहते हैं।'

त्याग और भोग

(डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

'संसारका सब कुछ सर्वव्यापी परमात्मासे व्याप्त है। इसका कोई भी अंश उनसे रहित नहीं है।' ऐसा मानकर निरन्तर ईश्वरका स्मरण करना चाहिये। ईश-उपनिषद्के ऋषि कहते हैं—'जो सदा ईश्वरका स्मरण करते हुए, संसारके प्रति आसक्ति या ममता न रखते हुए केवल कर्तव्य-पालनके लिये ही विषयोंका यथाविधि उपभोग करता है, अर्थात् विश्वात्मा ईश्वरकी पूजा मानकर ही समस्त कर्मोंका आचरण करता है, उसका मन विषयोंमें नहीं बँधता। उसका निश्चित रूपसे कल्याण होता है।'

वस्तुतः संसारमें जितने भोग्य पदार्थ हैं, वे किसी एकके नहीं हैं। मनुष्य भूलसे उन्हें अपना समझ लेता है या उसके प्रति आसक्ति या ममत्व रखता है। सच तो यह है कि संसारके सारे भोग्य पदार्थ परमेश्वरके हैं, जिनका उपयोग उनकी प्रसन्नताके लिये ही होना चाहिये। त्यागपूर्वक भोग ही वाञ्छित है, भोगके प्रति नितान्त आसक्ति अनुचित है।

भारतीय चिन्तन संग्रहवादी या भोगवादी नहीं, अपितु वह त्यागवादका समर्थन करता है। भारतीय शास्त्र कहता है—'जितनेसे पेट भर जाय, उतनेसे ही संतोष करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करके केवल अनपेक्षित संग्रह करता है, वह दूसरेका छीनता या चुराता है, इसलिये वह दण्डका भागी है'—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७। १४। ८)

संत कबीरदास भी ऐसा ही कहते हैं—

साईं इतना दीजिये जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय॥

अपनी अनिवार्य आवश्यकतासे अधिक किसी वस्तुका ग्रहण या भविष्यके लिये उसका संचय सर्वथा अनुचित एवं शास्त्रविरुद्ध भी है। भगवान् महावीरने इसे परिग्रह कहा है। इसके विपरीत, 'अपरिग्रह' के अनुसार आचरण करनेका अर्थ है मनुष्य सतत श्रम करते हुए समाजसे उतना ही ग्रहण करे, जितना उसके जीवनके लिये अनिवार्य हो, शेष सब कुछ समाजके कल्याणके लिये छोड़ देना चाहिये। महात्मा गाँधीका विश्वास था कि 'अगर सभी व्यक्ति अपने दैनिक जीवनमें अपरिग्रहका आचरण करें तो समाजमें व्याप्त आर्थिक विषमताका अन्त हो सकता है।'

ज्ञातव्य है, आवश्यकता ही मनुष्यके दुःखोंका मूल कारण है। मनुष्यकी आवश्यकतापूर्ति हो जानेपर उसे क्षणिक सुख अवश्य मिलता है, परंतु एक आवश्यकताके बाद अन्य अनेक आवश्यकताओंका सिलसिला शुरू हो जाता है। इस प्रकार इन जरूरतोंका क्रमशः बढ़ते जाना सुखजनक नहीं, बल्कि दुःख-वृद्धिका ही कारण है। अतएव जबतक आवश्यकताविहीन स्थिति नहीं आती, तबतक परमसुखकी प्राप्ति सम्भव ही नहीं। मनुष्य जैसे-जैसे अपनी आवश्यकताओंमें कमी करेगा, वैसे-वैसे परम सुखके समीप पहुँचता जायगा। यदि वर्तमानमें राष्ट्र, समाज और व्यक्तिको आत्मिक शान्तिकी प्राप्ति और नैतिक मूल्योंकी पुनः स्थापना करनी है तो भोगवादी प्रवृत्तिसे विमुख होकर अपरिग्रह या त्यागवादको महत्त्व देना अनिवार्य होगा।

ईशोपनिषद्की घोषणा है कि इस संसारमें शास्त्रविहित कर्मोंका निष्पादन करते हुए सौ वर्षोंतक जीनेकी इच्छा करनी चाहिये। इस प्रकार त्यागभावसे किया गया कर्म कभी बन्धनमें नहीं डालता—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(मन्त्र २)

कर्म करते हुए भी कर्मोंमें लिप्त न होनेका यही एक मार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई भी मार्ग कर्म-बन्धनसे मुक्त नहीं कर सकता।

भगवान् महावीरका अपरिग्रह-सिद्धान्त यही है कि केवल कर्म, देह, कुटुम्ब, धन-वैभव आदि ही परिग्रह अथवा आसक्ति नहीं है, अपितु इनसे जुड़ना, इनमें ममत्व करना ही परिग्रह है। यहाँतक कि अपने रूप-सौन्दर्य

अथवा ज्ञान-वैदुष्यपर घमंड करना भी परिग्रह है। अतः परिग्रह केवल बहिरङ्ग ही नहीं होता, वरन् वह वस्तुसे भिन्न आन्तरिक भावोंमें भी जुड़ा होता है।

संसारका प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, शान्तिकी कामना करता है, परंतु वह इसके लिये वास्तविक प्रयत्न नहीं करता। आजके भौतिकवादी युगमें सभीने आसक्ति या परिग्रहको ही सुखका मूल मान रखा है। परिग्रह बढ़ानेवाले मनुष्यको अपना प्रिय जीवन, सुख-शान्ति सबका बलिदान कर देना पड़ता है। उसे सदैव तनावयुक्त अशान्त मनः-स्थितियोंका सामना करना पड़ता है।

शान्तिके प्रेमी स्वामी रामकृष्ण परमहंसजी महावीर स्वामीके समस्वर हैं, वे कहते हैं कि अगर तुम वास्तविक शान्ति प्राप्त करना चाहते हो तो इच्छाओंकी दासतासे, आसक्ति अथवा ममताकी गुलामीसे अपने मनको अलग करो। जिस क्षण तुम इच्छाओंसे ऊपर उठ जाओगे अथवा अनन्त इच्छाओंसे सर्वथा मुक्त हो जाओगे, तत्क्षण ही इच्छित वस्तु स्वतः तुम्हारी तलाश करने लग जायगी।

अतः प्राणिमात्रको आध्यात्मिक आश्रय ग्रहणकर प्रयत्नपूर्वक भोगवादसे निवृत्त एवं त्यागवादमें प्रवृत्त होना चाहिये, क्योंकि आजके इस विषम भौतिकवादी परिस्थितिमें अवश्य ही त्यागमूलक भोगके आचरणसे अथवा अपरिग्रहवादसे ही विश्वका कल्याण हो सकता है।

दीन, धर्म और भारतीयता

(श्री एस० बशीरुद्दीन, भूतपूर्व कुलपति डॉ० बी० आर० अम्बेडकर खुला विश्वविद्यालय एवं राजदूत कतार)

इंडियैनिज्म (Indianism) भारतीयता और अब हिन्दुत्व समानार्थी शब्द हैं—इसका परिज्ञान लोगोंके चिन्तन-मनन और सोच-विचारपर निर्भर है। और यह सोच उस हर व्यक्तिके लिये सम्भव है जिसके पास खुला मन है तथा जो भारतीय संस्कृतिको गहराईसे समझता है। ये तीनों शब्द उसके लिये पर्यायवाची हैं। परंतु जब इन शब्दोंका प्रयोग तुच्छ स्वार्थोंसे प्रेरित होकर सीमित राजनीतिक उद्देश्योंके लिये एक संकीर्ण संदर्भमें किया जाता है तो उनमें आकाश-पातालका अन्तर आ जाता है।

भारतमें परेशानीकी जड़ यह है कि संविधानकी संस्तुतिके अनुसार पारिभाषिक अर्थमें राज्यका विचार और कार्यमें धर्मनिरपेक्ष होना तय किया गया है, यद्यपि यह एक उत्तम उद्देश्य है, किंतु इसके कारण संस्कृति और समाजकी बहुतसी उपयोगी भूमिकाओंका हनन भी हो जाता है। आज लगभग एक हजार वर्षोंसे भारतमें रहते आ रहे मुसलमानोंके मनमें हिन्दुत्वके प्रति नकारात्मक चिन्तन नहीं आना चाहिये। लगभग यही बात ईसाइयों और सिक्खोंपर भी लागू होती है। इस स्थितिसे निपटनेका सबसे अच्छा तरीका—'हिन्दुत्व' भारतीयपन या आपको अच्छा लगे तो उसके संस्कृत-पर्याय 'भारतीयता'—जिसका किसी भी दृष्टिसे देखनेपर अर्थ होता है, संस्कृति, वैशिष्ट्य एवं भारतकी ऐतिहासिक विरासत—को समझना है। व्यावहारिक दृष्टिसे इसका अर्थ होना चाहिये अभिवादनके प्रकार—जैसे नमस्कार, नामके पहले 'श्री या श्रीमती'का सम्बोधन अथवा तमिल भाषामें 'थिरु' और उसी प्रकार किसी उर्दू या हिन्दी भाषीके लिये 'साहेब' तथा 'जी'।

सही तरीकेसे देखा जाय तो इसलाम एक मज़हब नहीं, अपितु धर्म है, जिसमें सर्वशक्तिमान्के प्रति समर्पण किया जाता है। इसलाममें जन्मनेवाला बच्चा परमात्माके प्राकृतिक नियमके अनुसार ही शरीर धारण करता है। उसका न कोई आदि है और न अन्त; क्योंकि इसलामका अर्थ होता है—ईश्वरका अन्तर्यामित्व जो मनुष्यकी जीवन-नाड़ी (शाहरग)-से भी अधिक निकट है। उसी प्रकार सनातनधर्म भारतकी चिरन्तन प्राचीन परम्पराका द्योतक है जो प्रमुख रूपसे व्यापक हिन्दूधर्मके उदात्त पक्षोंको नियन्त्रित करता है। बुद्धका धर्मपाद (धम्मपद) भी उससे भिन्न नहीं है। यदि भिन्नता है तो केवल यह कि उसकी व्यवस्था और उसके विस्तारके मूलमें गौतम बुद्ध हैं।

हिन्दुत्वकी छत्रच्छायामें इसलामी 'दीन' (नैतिक विधान) एवं 'हिन्दूधर्म' (सदाचार) साथ-साथ चल सकते हैं,

क्योंकि वे मत या मज़हब नहीं अपितु व्यक्तिगत और सामाजिक सदाचारको नियन्त्रित करनेवाले सार्वभौमिक आधार हैं। परंतु हुआ क्या है कि एक राजनीतिक दलने स्वविवेकसे हिन्दुत्वको अपना मुख्य आधार बना लिया है, परंतु इसके कारण समग्र हिन्दुत्व संकीर्ण धरातलपर नहीं उतरा है। इसलामी दीनका सार है—सर्वशक्तिमान्के अधीन रहकर अथवा ईश्वर या नैतिक विधानके प्रति निष्ठावान् रहकर ईमानदार बनना। उसी प्रकार हिन्दूधर्मका सार भी धर्म अर्थात् सदाचारका पालन करना है। यदि कोई हिन्दुत्व, इंडियैनिज्म (Indianism) या भारतीयताको समझनेका प्रयास करे तो पता चलेगा कि इनका अर्थ है—भारतीयोंकी जीवन-पद्धति, न कि उपासनाके रूपमें किये जानेवाले रीति-रिवाजोंका विवरण।

उसी प्रकार 'दीन'को यदि इसलामका अनिवार्य अङ्ग मान लिया जाय, जिसके अनुसार एक मानव स्वयंको परमेश्वरके प्रति समर्पित करते हुए प्रकृतिके विधान एवं आत्मसंयमसे बरतता है तो 'दीन' और 'धर्म' में कोई भी विरोध नहीं हो सकता।

भारतीय जनता पार्टी सत्तामें आये या न आये, हिन्दुत्व एक सर्वस्पर्शी व्यापक अवधारणा है जो भविष्यमें अधिकाधिक पल्लवित होती हुई भारतमें गहरी जड़ जमा लेगी। अतः यह समयकी माँग है कि प्रबुद्ध मुसलमान हिन्दुत्वको किसी काल्पनिक भयकी दृष्टिसे न देखते हुए उसे हजारों वर्षसे चली आ रही एक प्राचीन परम्पराके रूपमें देखें, जिसके अन्तर्गत बारह सौ वर्षसे भी अधिक पुरानी भारतीय और इसलामी प्रथाएँ सुचारु रूपसे चल सकें।

'खान साहेब' जैसा सम्बोधन 'आदाब अर्ज' के रूपमें अभिवादन हिन्दुत्व या भारतीयपन या भारतीयताके विरुद्ध नहीं माना जाना चाहिये, क्योंकि ताजमहल, बीजापुरका गोल गुम्बज, आगराके निकट फतेहपुर सीकरी सभी भारतीय विरासतके ही अङ्ग हैं। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ९५ करोड़ भारतीयोंमेंसे १३ करोड़ मुसलमान भी हिन्दुत्वके अभिन्न अङ्ग हैं, फिर उनके नाम संस्कृत-परम्पराके हों या अरबी-मूलके, वह अशोक हो या अकबर, फातिमा हो या पद्मा। ये विभेद मात्र सतही हैं, मानवका अस्तित्व हिन्दुत्वके अन्तर्गत पूरी तरह सुरक्षित है।

१७ करोड़ जनसंख्यावाला विश्वका सबसे बड़ा मुसलिम-बहुल देश इंडोनेशिया रामायण और महाभारतको यदि अपनी सांस्कृतिक विरासतका उद्गम मान सकता है तो कोई कारण नहीं कि भारतमें बसे १३ करोड़ मुसलमानोंको हिन्दुत्वको अपनी यथोचित सांस्कृतिक विरासत माननेमें कुछ हिचक हो।

मनोहर जोशीके मुकदमेसे सम्बन्धित उच्चतम न्यायालयके निर्णयके बादसे हिन्दुत्वको गम्भीरतासे लिया जा रहा है, जिसमें कहा गया है कि हिन्दुत्वका सम्बन्ध हिन्दू-उपासना-पद्धति या जीवन-पद्धतिसे न होकर व्यापक अर्थमें भारतकी सांस्कृतिक विरासतसे है। हठधर्मितासे जबतक कोई इसकी परिभाषाको संकीर्ण नहीं बना देता, तबतक इसका सम्बन्ध मात्र हिन्दू-उपासना-पद्धति या हिन्दू-जीवन-पद्धतिसे नहीं जोड़ा जा सकता।

कुरानमें स्पष्ट रूपसे अन्य उपासना-विधियोंका उल्लेख करते हुए कहा गया है—'तुम्हारे लिये तुम्हारी उपासना-विधि और मेरे लिये मेरी उपासना-विधि और जब हम दोनोंको ही ईश्वरकी प्राप्ति होगी तब वे (ईश्वर) बतलायेंगे कि क्या सही है और क्या गलत।' इससे पता चलता है कि उपासना-विधिके सम्बन्धमें कुरानमें लचीलापन है, उसमें विविध उपासना-विधियोंके साथ-साथ चलते रहनेको स्थान प्राप्त है तथा उनके औचित्यका निर्णय केवल ईश्वरके अधीन है अतः उपासना-पद्धतिमें किसी प्रकारका आग्रह नहीं होना चाहिये।

उसी प्रकार हिन्दुत्वसे प्राप्त 'सर्वधर्म-समभाव' की भारतीय अवधारणाका अर्थ है कि सभी धर्म (पंथ) समानरूपसे सम्माननीय हैं। यह भय कि हिन्दुत्वके कारण मुसलमानोंकी सांस्कृतिक पहचान (अस्तित्व) खतरेमें पड़ जायगी निराधार है, क्योंकि इस सम्बन्धमें व्यक्तिको स्वयंके जीवनको उच्चतम न्यायालयद्वारा निर्णीत सत्यकी नयी चेतनामें विकसित करनेका प्रयास करना है। अब जब देशकी सर्वोच्च न्यायपालिकाने ही हिन्दुत्वकी इतनी व्यापक व्याख्या प्रस्तुत कर दी है तो व्यक्तिको उस निर्णयका न केवल सम्मान करना चाहिये, अपितु यह प्रयास भी करना चाहिये कि इस धारणाको और भी अधिक व्यापक कैसे बनाया जाय ताकि भारतीय संस्कृति और परम्पराकी सभी धाराएँ उसमें समा सकें।

एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि 'भारतीयता' तो

हिन्दुत्वके निहितार्थोंसे बच निकलनेका एक भाषाई तरीका है, परंतु जिनको हिन्दुत्वपर आपत्ति है उनको भारतीयतापर भी मानसिक दुराग्रह हो सकता है।

शरियाके अनुमोदनके बिना ही बाबरी मसजिद स्थान-परिवर्तन-विवादका पटाक्षेप हो गया अन्यथा मुसलमानोंके लिये अपनी सदियों पुरानी कड़वाहट, जो मुसलिम आक्रान्ताओंद्वारा अपने मज़हबके प्रचारके लिये मसजिद खड़ी करनेसे आयी थी, को दूर करनेका एक अच्छा अवसर हो सकता था। स्वेच्छासे मसजिदके स्थानान्तरणद्वारा मुसलमानोंको न केवल व्यथित बहुसंख्यक हिन्दू समाजकी सद्भावना प्राप्त हुई होती, बल्कि भीषण रक्तपात एवं दो समुदायोंके बीच भाववेदनासे भी बचा जा सकता था।

किंतु कुछ मुसलमानोंके अपने ही भय और अविश्वासके कारण मुसलिम समाजको बिना किसी प्रकारकी सद्भावना दिये मसजिद तो चली ही गयी और छोड़ गयी दोनों ओर केवल कटुता और प्रतिरोधकी दुर्गन्ध। भारतकी सीमासे पार दूर देशकी एक विदेशी संस्कृतिको अपने मज़हबका अङ्ग मानना जो कि वास्तवमें है नहीं, इसलामकी अत्यन्त अदूरदृष्टि है। १७ करोड़की जनसंख्यावाले विश्वके सबसे बड़े इसलामी देश इंडोनेशियामें जहाँ ९० प्रतिशत जनसंख्या मुसलमान है, रामायण और महाभारतके चित्र कार्यालयोंमें लगे हुए हैं, विष्णु और गणेशकी प्रतिमाएँ रास्तेके चौराहोंपर लगी हैं तथा शिव और पार्वती-जैसे देव-देवियोंको तराशते हुए मुसलमान १००० वर्ष पूर्वसे हिन्दू-पूजा-पद्धति और परम्परामें पले होनेकी अपनी हिन्दुत्व-चेतनाका परिचय दे रहे हैं।

भारतमें बार-बार होनेवाले साम्प्रदायिक दंगोंके कई कारण बताये जाते हैं। परंतु इस बातको नकारा नहीं जा सकता कि भारतकी बहुसंख्यक जनताके मनमें यह भाव समाया हुआ है कि हमपर विदेशी संस्कृति थोपी गयी है तथा हमारे पवित्र मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट किया गया है। इस सम्बन्धमें मुसलिम अल्पसंख्यकोंको भी इन ऐतिहासिक तथ्योंके प्रति स्वीकारोक्तिपूर्ण सहानुभूति रखनी चाहिये न कि उसके विपरीत अनावश्यक टीका-टिप्पणी करें या अनजानेमें अथवा तथ्योंको तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते हुए भावनाओंको दबायें। यद्यपि सदियोंपूर्व जो कुछ हुआ उसके लिये वर्तमान पीढ़ी उत्तरदायी नहीं है, परंतु अतीतकी स्मृति कराते हुए शीर्षस्थ नेताओंको हिन्दू-संस्कृतिकी उदारता और सहिष्णुताका अहसास तो अवश्य ही कराया जा सकता है।

बहुत-सी गलतफहमियोंका मूल कारण भाषाई (भाषासम्बन्धी मतभेद) है, क्योंकि संस्कृत मुसलमानोंसे तथा अरबी हिन्दुओंसे नितान्त भिन्न है। परंतु इन भाषाओंमें निबद्ध धार्मिक मन्त्र जो गलतफहमी पैदा कर सकते हैं, उनके अनुवाद यदि भारतकी प्रचलित भाषाओंमें उपलब्ध करा दिये जायँ, तब लोगोंको पता लगेगा कि वास्तवमें वे भाषा-विशेषद्वारा की जानेवाली परमेश्वरकी आराधनाके विविध मार्ग हैं, अतः किसी भी मार्गके प्रति वैर-भाव रखनेकी आवश्यकता नहीं है।

इस सम्बन्धमें दूरसंचार माध्यमोंकी भूमिका निर्णायक है। भारतमें दूरदर्शन और आकाशवाणी नौकरशाही नियन्त्रण तथा धर्मनिरपेक्षताके सम्बन्धमें निराधार भय और आशंकाओंके कारण अपनी सामर्थ्यको नहीं समझ पाये हैं और इस कारण इस खाईको पाटने तथा धर्मके सकारात्मक पक्षको प्रसारित करनेमें विफल हुए हैं। अधिक-से-अधिक कहा जाय तो श्रव्य-दृश्य माध्यम (Audio-Visual Media) उदासीन ही रहा है। उदासीन रहना तथा बहुसंख्यक हिन्दू त्यौहारोंके साथ ही अन्य विविध मतोंके मूल्यों, आदर्शों एवं विशेषताओं तथा मुसलिम, सिख, पारसी, जैन, ईसाई आदि सभी समुदायोंके त्यौहारोंको सकारात्मक एवं सहायक-रूपमें प्रस्तुत करते हुए प्रसारित करना एक ही बात नहीं है। दर्शकोंमें सोच और समझ जाग्रत् करनेका यही तरीका है, जिससे वे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने-हेतु सद्भाव निर्मित करनेमें सहायक हो सकें। अतः हम हिन्दुत्वका हौआ बनाकर हो-हल्ला न मचायें बल्कि भारतीय विरासतको भारतमें रहनेवाले सभी लोगोंतक ले जानेकी उसकी सकारात्मक भूमिका एवं सांस्कृतिक परम्पराको समझनेका प्रयास करें।

[अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स'से साभार गृहीत एवं डॉ० सुरेशचन्द्र शर्माद्वारा अनूदित]

मानसमें धर्मकी परिभाषा

(डॉ० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्०ए०, डी०लिट्०)

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शंकरका वचन है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

इस स्थानपर यह प्रश्न उठता है कि 'वह कौन-सा धर्म है, जिसकी हानि होनेपर कृपानिधान पृथ्वीपर अवतरित होनेका कष्ट स्वीकार करते हैं? क्या प्रभु किसी धर्मविशेषकी हानिपर अवतार धारण करते हैं? यदि ऐसा मानें तो करुणानिधानमें पक्षपातका दोषारोपण हो जाता है। प्रभु किसी जाति या देशविशेषके हितार्थ अवतार नहीं धारण करते—*'राम जनमु जग मंगल हेतू।'* करुणामय जगत्पिता हैं। अतएव उनकी कोई बात भाषा, जाति, देश अथवा अन्य किसी भेदसे सीमित नहीं है। जो असीम है, उसकी सीमा कैसी?

हमारे वेद तथा उपनिषद् किसी एक सम्प्रदायकी अपनी निधि नहीं हैं। वे हिंदू इसलिये कहलाते हैं कि उनका प्रादुर्भाव उस संस्कृतिमें हुआ, जिसकी परम्परा हिंदू-संस्कृतिमें सुरक्षित है। वे भारतीय इसलिये कहलाते हैं कि उनका यह दृष्टिकोण कि 'वसुधापर सब प्राणी एक ही कुटुम्बके हैं'। यह विशेष प्रकारसे भारतीय दृष्टिकोण है। अतः हमारे अलौकिक वेद तथा उपनिषद् न केवल हिंदू हैं न भारतीय। वे मानवताकी निधि हैं, वे मानवजगत्के कल्याणके पक्षमें हैं, उनका ध्येय जीवमात्रका परम हित है। इस अलौकिक परम्परामें श्रीरामचरितमानसका सृजन हुआ। इस कारण जिस धर्मकी हानिको अवतारका हेतु मानसमें बतलाया है, वह धर्म एकजातीय या एकपक्षीय नहीं हो सकता। हर-एक मानवका हृदय अयोध्या है, अतएव मानसकी कथा ऐसे राम-सीताकी कथा है, जिनकी अयोध्या नगरी प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें है। इसलिये मानस 'एपिक ऑफ ह्युमैनिटी' है—मानवताका महाकाव्य है, अनुपम है और अद्वितीय है।

धर्मको हमारे जीवनमें बड़ा ऊँचा स्थान दिया गया है। ऋषियोंने कहा है कि धर्म वह है जो जगत्को धारण करता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जगत्को कौन-सा धर्म धारण करता है? क्या बौद्धोंका धर्म धारण करता है? या यहूदियोंका? या ईसाइयोंका? या अन्य कोई? निश्चय ही वह और कोई धर्म है, जो जगत्की स्थितिका आधार है, क्योंकि यह धर्म सर्वव्यापक होगा, सार्वभौमिक होगा, उन सब धर्मोंसे पुराना होगा जिनको मनुष्यने बनाया है। जो धर्म जगत्का आधार है, उसका जन्म जगत्की सृष्टिके समकालीन रहा होगा, अनादि होगा।

जगत्के जीवन-स्रोत सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाशादि हैं। यदि सूर्य अपना कार्य न करें, या वायु अथवा आकाशादि अपना धर्म छोड़ दें तो जगत्की स्थिति डाँवाडोल हो जाय। जगत्का आधार वह धर्म है, जिसका अनुसरण ये सब करते हैं। **'स्वलक्षणधारणाद् धर्मः।'** अपने-अपने लक्षणके अनुसार, अपने-अपने गुणके अनुसार कार्य करना स्वधर्म है। स्वलक्षणोत्पन्न स्वधर्म श्रेष्ठ धर्म है। ऐसे स्वलक्षणानुकूल धर्मका पालन भगवान्के आदेशका प्रतीक है, क्योंकि यह धर्म उन गुणोंके अनुकूल है, जो प्रभुने हमें जन्मके साथ प्रदान किये हैं।

इस सम्बन्धमें यह भी विचारणीय है कि जगत्में हमारा स्थान क्या है और हमारा स्वलक्षणानुसार क्या धर्म है। जिसने थोड़ी अंग्रेजी पढ़ी है, उसने रोबिन्सन क्रूसोका नाम सुना होगा। इस उपन्यासमें रोबिन्सन क्रूसोका जहाज समुद्रमें टक्कर खाकर एक निर्जन टापूके पास टूट जाता है और क्रूसो उस टापूपर कुछ दिन एकदम अकेला रहता है। यदि ईश्वर चाहते तो इस पृथ्वीको और बड़ी बनाकर प्रत्येक व्यक्तिको एक-एक टापूपर जन्म दे देते, जिसमें वह निर्जन स्थानमें रहकर जीवन काट लेता, परंतु ईश्वरने ऐसा नहीं किया। उन्होंने हमारा समूहोंसे नाता बनाया, परिवार, कुल, जाति, देशके सम्बन्धोंसे हमें बाँधा, मनुष्यको एक सामाजिक प्राणी बनाया। हम संसारमें अकेले नहीं रहते। हम अनेक पारस्परिक सम्बन्धोंसे बँधे हैं जिनके हितकी रक्षा करना हमारा धर्म है। आहार, निद्रा, मैथुनवाले जीवनसे उच्च स्तरके जीवन-यापनकी क्षमता रखनेके कारण मनुष्य पशुकी श्रेणीसे ऊपर उठकर मानवकी श्रेणीमें आता है और इसी कारण वह सामाजिक पशुसे मानवीय समाजका अङ्ग बन

जाता है। मनुष्यका जीवन केवल भौतिक जीवन नहीं है अपितु वह नैतिक और आध्यात्मिक भी है। मनुष्यकी प्रकृति—जिसको मनन करनेकी शक्ति प्रभुने प्रदान की है—स्वभावत: नैतिक है, इसलिये इसका स्वलक्षण नैतिक है और मनुष्यका जीवन मुख्यत: सामाजिक है। यदि मनुष्यके स्वलक्षण और जीवनके विशिष्ट गुणोंका हम एकीकरण करें तो हम इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि नैतिक मनुष्यको अपने सामाजिक जीवनमें स्व-अर्थका ध्यान कम और पर-अर्थका ध्यान अधिक रखना चाहिये। सुखी, कल्याणप्रद जीवनका रहस्य परहित है, क्योंकि परहित हमारे स्वलक्षणानुकूल है और परहितद्वारा ही हम अपने विविध सम्बन्धभरे जीवनको सफल कर सकते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें करुणानिधान प्रभुने अपने प्राण-समान प्रिय भाइयों और प्रिय पवनकुमारको धर्मका तत्त्व समझानेके लिये धर्मकी यही परिभाषा की है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।

सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी आदि, जो जगजीवनके आधार हैं, निरन्तर परहितनिरत हैं। सूर्य अपने लिये नहीं तपते, चन्द्रमा अपने लिये अमृत-वर्षा नहीं करते, जलद अपने लिये पानी नहीं बरसाते, पृथ्वी अपने लिये फल-अन्न, पुष्प-पत्र नहीं उत्पन्न करती, जल और वायु अपने प्राणकी रक्षाके लिये नहीं बहते—ये सब परहितमें संलग्न हैं। इनके जीवनमें अथक, अबाधगतिसे परहित व्याप्त है। ये स्वलक्षणानुसार परहित करके धर्म-पालन करते हैं और जगत्-धारणके कारण बने हुए हैं। स्वलक्षणानुकूल स्वधर्मद्वारा परहितपालन वह धर्म है, जो सृष्टिका आधार है। यह धर्म आजका नहीं, वर्ष, दो-वर्ष पुराना नहीं, कुछ शताब्दियों पहलेका नहीं है। यह धर्म सृष्टिके जन्म-समयसे है। सृष्टिके आदिमें इसका आरम्भ हुआ था। यह धर्म पुराना है, जाति-देश-कालके परे है—सनातन है।

इस धर्मकी जब हानि होती है, तब पृथ्वी भी अपना धैर्य खो बैठती है, क्योंकि असुर बढ़ जाते हैं और वे सर्वत्र फैलकर अपना साम्राज्य स्थापित कर देते हैं। आसुरी राज्यमें हिंसाका अन्त नहीं रहता, सब स्वार्थरत होकर परद्रोही हो जाते हैं। प्राणियोंके जीवनको अकथ दु:ख-निमग्न देखकर धरणी व्याकुल हो उठती है। मानसमें दो स्थलोंपर राक्षसोंके लक्षण स्पष्ट किये गये हैं—बालकाण्डमें और उत्तरकाण्डमें। बालकाण्डमें लिखा है—

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥

× × ×

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

उत्तरकाण्डमें कहते हैं—

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निरदय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥

× × ×

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

मानसमें जिस प्रकार साधु, संत, विप्र और सज्जन पर्यायवाची शब्द हैं, उसी प्रकार खल, असंत, असुर और निशाचर एकार्थी हैं। ऊपरके उद्धृत अंशोंका सार यही है कि असुर, राक्षस, मनुजाद अत्यन्त स्वार्थपरायण हैं। अपने छोटे-से अर्थके साधनके निमित्त या स्वार्थ-साधन न भी हो तो केवल दूसरेको दु:ख पहुँचानेके लिये ही वे क्रूरतम हिंसा करनेमें संकोच नहीं करते। 'परहित'-धर्मके विनाशमें वे हर समय संलग्न रहते हैं।

पर हित घृत जिन्ह के मन माखी।

इसलिये करुणानिधान प्रभुके लिये कहा गया है—

'मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवम्।'

प्रभु खल-वध-निरत हैं, क्योंकि खलोंके कारण, राक्षसोंके कारण उस 'परहित'-धर्मकी हानि होती है, जिसके द्वारा जगत् धारण किया जाता है। अतएव जगत्की

मानसमें धर्मकी परिभाषा

(डॉ० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्०ए०, डी०लिट्०)

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शंकरका वचन है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

इस स्थानपर यह प्रश्न उठता है कि 'वह कौन-सा धर्म है, जिसकी हानि होनेपर कृपानिधान पृथ्वीपर अवतरित होनेका कष्ट स्वीकार करते हैं? क्या प्रभु किसी धर्मविशेषकी हानिपर अवतार धारण करते हैं? यदि ऐसा मानें तो करुणानिधानमें पक्षपातका दोषारोपण हो जाता है। प्रभु किसी जाति या देशविशेषके हितार्थ अवतार नहीं धारण करते—'*राम जनमु जग मंगल हेतू।*' करुणामय जगत्पिता हैं। अतएव उनकी कोई बात भाषा, जाति, देश अथवा अन्य किसी भेदसे सीमित नहीं है। जो असीम है, उसकी सीमा कैसी?

हमारे वेद तथा उपनिषद् किसी एक सम्प्रदायकी अपनी निधि नहीं हैं। वे हिंदू इसलिये कहलाते हैं कि उनका प्रादुर्भाव उस संस्कृतिमें हुआ, जिसकी परम्परा हिंदू-संस्कृतिमें सुरक्षित है। वे भारतीय इसलिये कहलाते हैं कि उनका यह दृष्टिकोण कि 'वसुधापर सब प्राणी एक ही कुटुम्बके हैं'। यह विशेष प्रकारसे भारतीय दृष्टिकोण है। अत: हमारे अलौकिक वेद तथा उपनिषद् न केवल हिंदू हैं न भारतीय। वे मानवताकी निधि हैं, वे मानवजगत्के कल्याणके पक्षमें हैं, उनका ध्येय जीवमात्रका परम हित है। इस अलौकिक परम्परामें श्रीरामचरितमानसका सृजन हुआ। इस कारण जिस धर्मकी हानिको अवतारका हेतु मानसमें बतलाया है, वह धर्म एकजातीय या एकपक्षीय नहीं हो सकता। हर-एक मानवका हृदय अयोध्या है, अतएव मानसकी कथा ऐसे राम-सीताकी कथा है, जिनकी अयोध्या नगरी प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें है। इसलिये मानस 'एपिक ऑफ ह्युमैनिटी' है—मानवताका महाकाव्य है, अनुपम है और अद्वितीय है।

धर्मको हमारे जीवनमें बड़ा ऊँचा स्थान दिया गया है। ऋषियोंने कहा है कि धर्म वह है जो जगत्को धारण करता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जगत्को कौन-सा धर्म धारण करता है? क्या बौद्धोंका धर्म धारण करता है? या यहूदियोंका? या ईसाइयोंका? या अन्य कोई? निश्चय ही वह और कोई धर्म है, जो जगत्की स्थितिका आधार है, क्योंकि यह धर्म सर्वव्यापक होगा, सार्वभौमिक होगा, उन सब धर्मोंसे पुराना होगा जिनको मनुष्यने बनाया है। जो धर्म जगत्का आधार है, उसका जन्म जगत्की सृष्टिके समकालीन रहा होगा, अनादि होगा।

जगत्के जीवन-स्रोत सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाशादि हैं। यदि सूर्य अपना कार्य न करें, या वायु अथवा आकाशादि अपना धर्म छोड़ दें तो जगत्की स्थिति डाँवाडोल हो जाय। जगत्का आधार वह धर्म है, जिसका अनुसरण ये सब करते हैं। **'स्वलक्षणधारणाद् धर्मः।'** अपने-अपने लक्षणके अनुसार, अपने-अपने गुणके अनुसार कार्य करना स्वधर्म है। स्वलक्षणोत्पन्न स्वधर्म श्रेष्ठ धर्म है। ऐसे स्वलक्षणानुकूल धर्मका पालन भगवान्के आदेशका प्रतीक है, क्योंकि यह धर्म उन गुणोंके अनुकूल है, जो प्रभुने हमें जन्मके साथ प्रदान किये हैं।

इस सम्बन्धमें यह भी विचारणीय है कि जगत्में हमारा स्थान क्या है और हमारा स्वलक्षणानुसार क्या धर्म है। जिसने थोड़ी अंग्रेजी पढ़ी है, उसने रोबिन्सन क्रूसोका नाम सुना होगा। इस उपन्यासमें रोबिन्सन क्रूसोका जहाज समुद्रमें टक्कर खाकर एक निर्जन टापूके पास टूट जाता है और क्रूसो उस टापूपर कुछ दिन एकदम अकेला रहता है। यदि ईश्वर चाहते तो इस पृथ्वीको और बड़ी बनाकर प्रत्येक व्यक्तिको एक-एक टापूपर जन्म दे देते, जिसमें वह निर्जन स्थानमें रहकर जीवन काट लेता, परंतु ईश्वरने ऐसा नहीं किया। उन्होंने हमारा समूहोंसे नाता बनाया, परिवार, कुल, जाति, देशके सम्बन्धोंसे हमें बाँधा, मनुष्यको एक सामाजिक प्राणी बनाया। हम संसारमें अकेले नहीं रहते। हम अनेक पारस्परिक सम्बन्धोंसे बँधे हैं जिनके हितकी रक्षा करना हमारा धर्म है। आहार, निद्रा, मैथुनवाले जीवनसे उच्च स्तरके जीवन-यापनकी क्षमता रखनेके कारण मनुष्य पशुकी श्रेणीसे ऊपर उठकर मानवकी श्रेणीमें आता है और इसी कारण वह सामाजिक पशुसे मानवीय समाजका अङ्ग बन

जाता है। मनुष्यका जीवन केवल भौतिक जीवन नहीं है अपितु वह नैतिक और आध्यात्मिक भी है। मनुष्यकी प्रकृति—जिसको मनन करनेकी शक्ति प्रभुने प्रदान की है—स्वभावतः नैतिक है, इसलिये इसका स्वलक्षण नैतिक है और मनुष्यका जीवन मुख्यतः सामाजिक है। यदि मनुष्यके स्वलक्षण और जीवनके विशिष्ट गुणोंका हम एकीकरण करें तो हम इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि नैतिक मनुष्यको अपने सामाजिक जीवनमें स्व-अर्थका ध्यान कम और पर-अर्थका ध्यान अधिक रखना चाहिये। सुखी, कल्याणप्रद जीवनका रहस्य परहित है, क्योंकि परहित हमारे स्वलक्षणानुकूल है और परहितद्वारा ही हम अपने विविध सम्बन्धभरे जीवनको सफल कर सकते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें करुणानिधान प्रभुने अपने प्राण-समान प्रिय भाइयों और प्रिय पवनकुमारको धर्मका तत्त्व समझानेके लिये धर्मकी यही परिभाषा की है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।

सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी आदि, जो जगजीवनके आधार हैं, निरन्तर परहितनिरत हैं। सूर्य अपने लिये नहीं तपते, चन्द्रमा अपने लिये अमृत-वर्षा नहीं करते, जलद अपने लिये पानी नहीं बरसाते, पृथ्वी अपने लिये फल-अन्न, पुष्प-पत्र नहीं उत्पन्न करती, जल और वायु अपने प्राणकी रक्षाके लिये नहीं बहते—ये सब परहितमें संलग्न हैं। इनके जीवनमें अथक, अबाधगतिसे परहित व्याप्त है। ये स्वलक्षणानुसार परहित करके धर्म-पालन करते हैं और जगत्-धारणके कारण बने हुए हैं। स्वलक्षणानुकूल स्वधर्मद्वारा परहितपालन वह धर्म है, जो सृष्टिका आधार है। यह धर्म आजका नहीं, वर्ष, दो-वर्ष पुराना नहीं, कुछ शताब्दियों पहलेका नहीं है। यह धर्म सृष्टिके जन्म-समयसे है। सृष्टिके आदिमें इसका आरम्भ हुआ था। यह धर्म पुराना है, जाति-देश-कालके परे है—सनातन है।

इस धर्मकी जब हानि होती है, तब पृथ्वी भी अपना धैर्य खो बैठती है, क्योंकि असुर बढ़ जाते हैं और वे सर्वत्र फैलकर अपना साम्राज्य स्थापित कर देते हैं। आसुरी राज्यमें हिंसाका अन्त नहीं रहता, सब स्वार्थरत होकर परद्रोही हो जाते हैं। प्राणियोंके जीवनको अकथ दुःख-निमग्न देखकर धरणी व्याकुल हो उठती है। मानसमें दो स्थलोंपर राक्षसोंके लक्षण स्पष्ट किये गये हैं—बालकाण्डमें और उत्तरकाण्डमें। बालकाण्डमें लिखा है—

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥

× × ×

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

उत्तरकाण्डमें कहते हैं—

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निरदय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥

× × ×

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

मानसमें जिस प्रकार साधु, संत, विप्र और सज्जन पर्यायवाची शब्द हैं, उसी प्रकार खल, असंत, असुर और निशाचर एकार्थी हैं। ऊपरके उद्धृत अंशोंका सार यही है कि असुर, राक्षस, मनुजाद अत्यन्त स्वार्थपरायण हैं। अपने छोटे-से अर्थके साधनके निमित्त या स्वार्थ-साधन न भी हो तो केवल दूसरेको दुःख पहुँचानेके लिये ही वे क्रूरतम हिंसा करनेमें संकोच नहीं करते। 'परहित'-धर्मके विनाशमें वे हर समय संलग्न रहते हैं।

पर हित घृत जिन्ह के मन माखी।

इसलिये करुणानिधान प्रभुके लिये कहा गया है—

'मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवम्।'

प्रभु खल-वध-निरत हैं, क्योंकि खलोंके कारण, राक्षसोंके कारण उस 'परहित'-धर्मकी हानि होती है, जिसके द्वारा जगत् धारण किया जाता है। अतएव जगत्की

रक्षाके हेतु असुर-वध वाञ्छनीय है। ऐसा ही करनेसे अनादिकालसे प्रचलित धर्मकी रक्षा सम्भव है।

करुणानिधानके अवतरण-फलका निशाचर-वध नकारात्मक पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष है—संतोंकी, साधुओंकी, विप्रोंकी, सज्जनोंकी रक्षा।

शंकरभगवान्‌का वचन है—

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

'सज्जन' अर्थात् परहित-रत व्यक्ति, जो परहितके लिये सहर्ष कष्ट सहन करें।

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।

और फिर आगे मानसकार कहते हैं—

संत सरल चित जगत हित।

इसलिये संतोंकी, सज्जनोंकी रक्षा करनेसे परहितधर्मकी पुष्टि होती है, अभिवृद्धि होती है।

श्रीरघुनाथजीने श्रीमुखसे अपने प्रिय भ्राताओं और पवनकुमारको शिक्षा दी कि—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।

—जिसका अर्थ यह है कि 'पर हित'-विचारसे जैसी जगमङ्गलकी रक्षा होती है, वह और किसी प्रकार नहीं होती। 'पर हित'की प्रवृत्तिसे ही हम पशु-धरातलसे ऊपर उठकर मानवप्राणीके स्तरपर पहुँचते हैं। पूजा, पाठ, जप, तप, दान तथा कथा-श्रवणादि सब गौण हैं। प्रधान है—परहितकी वृत्ति। परहितकी भूमिकामें हमको अपने सब पुण्य-कर्म करने अपेक्षित हैं। यह जग-मङ्गलका मूल स्रोत है। जगत्‌को यही धारण करता है। परहित परम धर्म है।

परहित-धर्म त्याग देनेसे महान् तपस्वी दशशीश राक्षस हो गया, लोगोंको रुलानेवाला रावण हो गया। ***'पर हित'*** ही वास्तवमें सब धर्मोंके ऊपर, सब धर्मोंके अंदर और सब धर्मोंका आधार है। यह प्रकृतिका धर्म है, यही मनुष्यका धर्म है, यही सार्वभौमिक धर्म है, यही सनातन धर्म है।

सबतें धन्य धन्य वृन्दावन, जहँ श्रीकृष्णको वास

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

श्यामवर्ण, सुन्दर पीताम्बर धारण किये, सम्पूर्ण शरीरको सुवासित चन्दन-केसरसे लेपितकर, मुखमण्डलपर मन्द-मन्द मुस्कान, कानोंमें रत्नजड़ित कुण्डल, वक्षः-स्थलपर कौस्तुभमणि, गलेमें वैजयन्तीमाला धारण किये श्रीश्यामसुन्दर, वृन्दावनके एक निकुंजमें श्रीराधाके संग विराजमान हैं। यमुना-किनारे कदम्बकी छाँवमें कन्हैया वेणुवादन कर रहे हैं। माधुर्य-रससे ओत-प्रोत श्रीराधा अपने प्रियतमके कंधेपर अपना कंधा रखे, समर्पितभावसे पलकें मूँदे लेटी हुई हैं। श्याम वेणुके सुरोंसे 'राधा-राधा' नाम अपने कानोंसे सुननेमें रस ले रहे हैं। मोहन सदैव ही 'राधा' नामको मुरलीमें गाया करते हैं। श्रीराधाके बिना श्रीकृष्णकी वंशी प्राणहीन हो जाती है और उनकी गति भी शून्य हो जाती है। श्रीराधारानीकी महिमाका वर्णन करते हुए रसिकशिरोमणि किसी कविने लिखा है—

परम धन राधा नाम अधार।

जाहि श्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारम्बार॥

यह महिमा है उस परम पवित्र श्रीवृन्दावन-धामकी, जो श्रीकृष्णको अपने गोलोकधामसे भी अधिक प्रिय है; क्योंकि कृष्ण सम्पूर्ण प्रकृतिके अंश-अंशसे अपनी राधाका नाम सुनकर आनन्दित होते रहते हैं। वृन्दावन, ऐसा अनुपम धाम है जहाँ वायुके झकोरोंसे, यमुनाकी कलकल करती धारासे, गोपियोंकी कंकण-पायलसे, पशु-पक्षियोंकी मधुर-मधुर स्वरलहरियोंसे, मयूरके नृत्यके कम्पनसे, देवताओंकी स्तुतिसे, योगी-तपस्वी महात्माओंकी वाणीसे, भक्तोंकी प्रार्थनासे 'राधे-राधे' की ध्वनि निरन्तर सुनायी देती है—

वृन्दावनके वृक्षका मरम न जाने कोय।

डार पात फल फूलसे 'श्री राधे राधे' होय॥

वृन्दावन राजधानी है वृषभानुनन्दिनी श्रीश्यामा प्यारीकी, भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं स्वीकार किया है कि श्रीवृन्दावनका वास श्रीराधाकी कृपाके बिना सम्भव नहीं। राधारानीकी कृपासे ही वृन्दावन रस और माधुर्यसे भरा रहता है—

सब रसको घर है सदा श्री वृन्दावन धाम।

जा मधि वैभव बरसत नित अधिपति श्यामा श्याम॥

अनन्त महिमाओंसे युक्त है श्रीवृन्दावन, जहाँ श्रीराधामाधव नित्य केलि-क्रीड़ा किया करते हैं। इसी वृन्दावनमें गोपियाँ माखनके एक-एक कणके लिये कान्हाको नाच नचाया करती हैं। यहीं ग्वाल-बाल कन्हैयाको घोड़ा बनाकर पीठपर सवारी करके आनन्द लिया करते हैं और इसी वृन्दावनमें मोहनकी मुरलीके स्वरसे तीनों लोक स्थिर हो खिंचे चले आते हैं। कृष्णभक्त सूरदासजीने इस लीलाका सजीव चित्रण करते हुए लिखा है—

सुनहु हरि मुरली बजाई।
मोहे सुर नर नाग निरंतर, ब्रज बनिता सब धाई॥
यमुना तीर प्रवाह थकित भयो, पवन रह्यो उरझाई।
खग मृग मीन अधीन भये सब, अपनी गति बिसराई॥
द्रुम वल्ली अनुराग पुलक तनु, ससि रह्यो निसि न घटाई।
सूर स्याम वृन्दावन बिहरत, चलहु चलहु सुधि पाई॥

अनन्त जन्मोंसे, अनन्त कल्पोंसे भगवान् श्रीकृष्णको अपने प्रियतम-रूपमें प्राप्त करनेके लिये श्रुतियों, ऋचाओं और ऋषिकन्याओंकी आकांक्षा पूर्ण करते हुए वृन्दावनमें गोपीरूपधारिणी, मनमोहिनी सरल स्वभाववाली भोली-भाली इन बालाओंके संग माधव रासलीला रचाया करते हैं। इसका सुन्दर वर्णन श्रीकृष्णभक्त महाकवि जयदेव गीतगोविन्दमें लिखते हैं—

नर्तन करती संग कृष्ण के, गोपी कोई देती ताल।
वंशीके स्वर में उसने दी, निज कंकण की लय को ढाल॥
इसपर माधव ने मोहित हो, किया प्रशंसा भरा बखान।
वशीकरण के मंत्र सरीखी, माधवकी मुरली की तान॥

माधुर्यका धाम है श्रीवृन्दावन, इसी कारण श्रीराधाको व्रजके अन्य स्थानोंकी अपेक्षा यहीं अपने प्रियतमके सांनिध्यमें अधिक आनन्द और प्रेमानुभूति प्राप्त होती है। रसात्मक लीलाओंका केन्द्र है वृन्दावन। यह श्रीवृन्दावन अनन्त और अनादि है, जहाँ प्रिया-प्रियतम एक-रस होकर नित्य विहार किया करते हैं। जहाँ फाल्गुनमें होली-पर्वपर प्रकृति विविध रंगोंमें सराबोर हो श्याममय हो जाती है, सावनकी फुहारोंके बीच कान्हा अपने सखाओंके संग जहाँ झूलेका आनन्द उठाते हैं, जहाँ नारदजी मुग्धा सखी-रूपमें सदा-सर्वदा विराजमान रहते हैं, जहाँ उद्धवजी महाराजने गोपी-प्रेमसे अभिभूत होकर कहा था—इन व्रजगोपियोंकी चरणरज अपने सिरपर धारण करनेके लिये गुल्मलता-रूपमें रहना होगा, तुलसीके वनोंसे आच्छादित जहाँ कन्हैया नंगे पैर गैया-बछड़े चराया करते हैं, वह दिव्यधाम केवल वृन्दावन ही हो सकता है—

धनि वंशीवट, धनि जमुना तट धनि धनि लता तमाल।
सबतें धन्य धन्य वृन्दावन, जहँ श्रीकृष्णको वास॥

भगवान्‌का प्रत्येक विधान कृपासे ही भरा होता है

जीवनमें एक बात कर लेनेपर सारा दुःख मिट सकता है। वह बात है—भगवान्‌की कृपालुतापर विश्वास कर लेना। सच मानिये—जैसे सूर्यमें अन्धकार देनेकी शक्ति नहीं, वैसे ही विनोदकी भाषामें यह कहा जा सकता है कि भगवान्‌में किसीका अमङ्गल करनेकी शक्ति नहीं है। उनका प्रत्येक विधान कृपासे ही भरा होता है, चाहे उसका स्वरूप बाहरसे कितना भी भीषण क्यों न हो! इसलिये आप किसी भी परिस्थितिमें घबरायें नहीं। शरीर बीमार हो रहा है, यह बात बाहरसे बड़ी दुःखद प्रतीत होती होगी, किंतु इस बीमारीके पर्देमें प्रभुका कितना मङ्गलमय विधान काम कर रहा है—इसकी कल्पना भी आपको अथवा किसीको होनी कठिन है। इसके अतिरिक्त शरीरको जिस दिन जाना होगा, उस दिन लाख प्रयत्न करनेपर भी चला ही जायगा और उस निश्चित तिथिके पहले यह कभी जायगा भी नहीं। इसलिये शरीरके जानेकी चिन्ता तो सर्वथा छोड़ देनी चाहिये, बल्कि आप बराबर यह भावना करें—भगवान्‌का जो विधान होगा, वह मङ्गलके लिये होगा; उनके हाथमें मेरा जीवन समर्पित है, फिर मुझे क्या चाहिये।

भारतीय सांस्कृतिक वाङ्मयमें अन्नकी महत्ता

(डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम्० एस्-सी० (उद्यान-कृषि), पी-एच्० डी०)

शास्त्रोंमें अन्नकी बड़ी महिमा बतलायी गयी है। गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका कथन है कि 'सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं और अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है।—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः। (गीता ३। १४)

अन्नकी महत्ताके प्रतिपादनमें श्रीमत्स्यपुराणमें उल्लिखित है कि अन्न ब्रह्मस्वरूप है, क्योंकि अन्नमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित रहते हैं और अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अतः अन्न स्वयं भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मीका स्वरूप है—

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते॥
अन्नमेव ततो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः॥

(मत्स्यपु० ८३। ४२-४३)

पराशरस्मृतिमें तो यहाँतक कहा गया है कि सत्ययुगमें प्राण अस्थिगत, त्रेतामें मांसगत, द्वापरमें रुधिरगत किंतु कलियुगमें तो प्राण अन्नादिमें ही स्थित रहते हैं, अन्न न मिलनेपर प्राण नष्ट हो जाता है—

कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः।
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः॥

(१। ३०)

अध्यात्मरामायणमें चन्द्रमाका कथन है कि जन्मसे पूर्व प्राणीकी आत्मा वनस्पतियों तथा अन्नमें प्रविष्ट रहती है, जिसके सत्त्वरूपी तेजसे जीवके शरीरकी गर्भमें रचना होती है। मत्स्यपुराण (१२६। ३८)-में कहा गया है कि मनुष्य सूर्यकी किरणोंद्वारा पोषित, जलद्वारा परिवर्धित एवं सिंचित, ओषधि तथा अन्नोंसे अपनी भूख शान्त करता है और अन्नरूपी अमृतसे ही जीवन धारण करता है। अन्नकी महत्ताके विषयमें मत्स्यपुराण (९३। १११)-में यहाँतक कहा गया है कि अन्नदानरहित यज्ञ दुर्भिक्ष प्रदान करनेवाला हो जाता है और अन्नहीन राष्ट्र शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। वैदिक साहित्यमें भी अन्नके विषयमें विशद वर्णन प्राप्त होता है। जैसे ऋग्वेदमें 'यव'के नामसे जौका, यजुर्वेदमें 'व्रीहि'के नामसे धानका, 'गोधूम'के नामसे गेहूँका और 'श्यामाक'से साँवाँ एवं 'प्रियङ्गु (टाँगुन)-का स्पष्ट उल्लेख है। विभिन्न पुरातात्त्विक खुदाइयोंसे भी प्रमाणित होता है कि अधिकांश अन्न (खाने योग्य अन्न या फसल) मूल रूपसे भारतमें ही उत्पन्न हुए और विश्वमें यहींसे उनका सर्वप्रथम प्रयोग प्रारम्भ हुआ। विन्ध्य तथा गङ्गाघाटीकी खुदाइयोंमें ईसासे दस हजार वर्ष पूर्वका चावल (धान) महादहा—प्रतापगढ़ (उ० प्र०)-में मिला है। इसी प्रकार चनीभन्दा, इलाहाबाद-स्थित गङ्गाघाटीकी खुदाईमें भी पंद्रह हजारसे सात हजार वर्ष ईसापूर्वका चावल (धान) मिलनेके वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं। विन्ध्यपर्वत-स्थित बेलान नदीघाटीकी खुदाईमें भी महागरा गाँवमें अति प्राचीन चावल (धान)-के अवशेष प्राप्त हुए हैं, वैज्ञानिकोंका मत है कि विश्वमें चावल (धान)-का उत्पादन तथा उपभोग इन्हीं क्षेत्रोंसे प्रारम्भ हुआ है। हड़प्पाकी खुदाईमें भी गेहूँ, धान, जौ, ज्वार, बाजरा इत्यादिके मिलनेके प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि भारतभूमि ही अधिकांश अन्नोंकी जननी है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (३। १०। १८-१९)-में पृथ्वीकी समस्त वनस्पतियोंका छः वर्गोंमें वैज्ञानिक वर्गीकरण दिया गया है, वहाँ अन्नको 'ओषधि' नामक द्वितीय वर्गमें रखा गया है। भागवतमें उल्लिखित है कि समस्त अन्नादिको भगवान् श्रीविष्णुने मानव-कल्याणार्थ बनाया है जो समस्त प्राणियोंके जीवनका आधार है। भागवत (८। २। २८ तथा ३। ६। १८)-के अनुसार अन्नादिकी उत्पत्ति विराट्-पुरुषके रोमोंसे हुई। मत्स्यपुराण (६०। ८-९)-में अन्नकी गणना सौभाग्याष्टकके रूपमें की गयी है, जिसके दानसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। मत्स्यपुराणमें रावी नदीके तटपर हिमालयके सुरम्य क्षेत्रमें महर्षि अत्रिद्वारा आयु एवं यश तथा बल प्रदान करनेवाली, भूख-प्यासके कष्टकी विनाशिका और सौभाग्यदायिनी पृथ्वीकी सारी ओषधि तथा अन्नोंके अद्वितीय संकलनका उल्लेख हुआ है जो पुराकालसे ही हमारे अन्न-सम्पदाकी पूर्णताका स्पष्ट प्रमाण है।

धर्मशास्त्रोंमें अन्नदानको सर्वोपरि माना गया है—'**सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते**'। बृहस्पतिस्मृतिके अनुसार जो अन्नदान नहीं करता उसे मृत्यूपरान्त परलोकमें भोजनके अभावमें भूख-प्याससे व्याकुल पागलोंकी तरह घूमते हुए विवश होकर अपने मृत शरीरको ही खाना पड़ता है, एतद्विषयक दो कथाएँ पौराणिक साहित्यमें मिलती हैं। पद्मपुराण सृष्टिखण्डके अनुसार विदर्भ-नरेश श्वेतने अपने भाईको राज्य देकर ८० वर्षतक घोर तपस्या की, जिससे उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई, वहाँ लोकोत्तर असीम सुख-

सुविधाएँ तो उन्हें प्राप्त हुईं, परंतु भूख-प्यास मिटानेका कोई साधन नहीं मिला। क्षुधा-पीड़ित राजाने जब ब्रह्माजीसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि 'पृथ्वीपर तुमने सत्कर्म तो बहुत किये, परंतु अन्नदान नहीं किया, अन्नसे केवल अपने शरीरका ही पोषण किया, अत: भूख मिटानेके लिये तुम्हें अपने मृत शरीरको ही खाना पड़ेगा।' प्रारब्ध कर्मजन्य इस विवशताके कारण राजा श्वेतको प्रतिदिन दिव्य विमानसे पृथ्वीपर आकर अपने मृत शरीरका ही भक्षण करना पड़ता। महाशक्तिमान् अगस्त्य ऋषिकी अनुकम्पासे श्वेतका यह अभक्ष्य-भक्षण रुका और ब्रह्मलोकमें उन्हें अक्षय अन्न-भण्डार प्राप्त हुआ। ऐसी ही कथा राजा विनीताश्वकी है। मृत्यूपरान्त जब इन्होंने भी क्षुधापीड़ित होकर अन्न न मिलनेका कारण पूछा तो उत्तर मिला—

नान्नं दत्तं तेन किंचित् स्वल्पं मत्वा यथा त्वया॥

अर्थात् तुमने स्वर्ण, रत्न, भूमि आदि विपुल मात्रामें दान किये, परंतु तुच्छ मानकर अन्नदान नहीं किया। अन्नसे केवल अपने शरीरका ही पालन-पोषण किया है, अत: तुम्हें उसी शवका भक्षण करना होगा। राजन्! अन्नदानसे बढ़कर और कोई दूसरा साधन सद्गतिमें हेतु नहीं है। बादमें गुरुकृपासे राजा विनीताश्व शव-भक्षणसे बचे।

अन्नदानकी महत्ताविषयक एक कथा महाभारतमें आती है। तदनुसार युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें बड़े-बड़े राजा, विद्वान्, ऋषि यहाँतक कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पधारे, जिनकी यथेष्ट पूजा-सत्कार तथा दानादिसे सम्मान किया गया, इससे युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञकी चतुर्दिक् चर्चा हुई, परंतु एक नेवलेके प्रसंगमें यह बात सिद्ध हो गयी कि युधिष्ठिरके सम्पूर्ण यज्ञ-दानादिका फल उस ब्राह्मणके सत्तूदानकी तुलनामें नगण्य है, जिसने फसल कटनेके बाद खेतोंसे अनाज चुनकर सत्तू तैयार किया और कई दिनोंसे भूखे रहते हुए परिवारके साथ ज्यों ही खानेको उद्यत हुआ, त्यों ही किसी क्षुधा-पीड़ितके याचना करनेपर उस सत्तूका दान कर दिया। महाभारत, अनुशासन-पर्व अ० ९३, स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय ३२ और पद्मपुराण, सृष्टि० अ० ७ में अन्नदानकी महिमाका विस्तृत उल्लेख द्रष्टव्य है। महर्षि अत्रिका कथन है कि अन्नदान करनेवालेको अक्षय तृप्ति और सनातन स्थितिकी प्राप्ति होती है। विविध प्रकारके दान अन्नदानके सोलहवें भागके बराबर भी नहीं हैं। अन्नकी पवित्रताका अनुमान हम इस बातसे लगा सकते हैं कि व्यासस्मृतिके अनुसार मनुष्यके षोडश-संस्कारोंमें सातवें संस्कारके रूपमें 'अन्नप्राशन'-संस्कारकी गणना की गयी है, जिसमें माताके गर्भमें मलिनभक्षणजन्य दोषको दूर करने-हेतु प्रथम बार नवजात-शिशुको अन्न चटानेका विधान है। यहाँ प्रयुक्त अन्नप्राशन-मन्त्र बड़ा साभिप्राय एवं अन्नकी महिमासे युक्त है—

शिवौ ते व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः॥

(अथर्व० ८। २। १८)

अर्थात् चावल और जौ कल्याणकारी हैं, कफ-दोषोंको दूर करनेवाले और भक्षण करनेके लिये मधुर हैं। ये यक्ष्म रोगोंको दूर करेंगे और दोषोंसे मुक्त करेंगे।

पौराणिक साहित्योंमें अन्नके विषयमें विस्तृत उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण (अ० ११८, २७६। ७, २७७। ११, २१७। ३६ तथा २१७। ८७)-में, याज्ञवल्क्यस्मृति (१। २०८)-की अपरार्क व्याख्या, व्याकरण, महाभाष्य (५। २। ४), वाजसनेयि-संहिता (१८। १२), दानमयूख और विधानपारिजात इत्यादि ग्रन्थोंमें प्रधानरूपमें अठारह प्रकारके अन्नोंका विवरण प्राप्त होता है। जिसकी गणना इस प्रकार की गयी है— साँवाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष्ट (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु (सरसो, राई या टाँगुन) और मसूर। एक अन्य मतके अनुसार मयुष्टादिके स्थानपर अतसी और नीवार ग्राह्य हैं।

अत: स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृत ग्रन्थोंमें धार्मिक दृष्टिसे अन्न व्यापक अर्थमें प्रयुक्त होता है, इसमें मुख्य अन्नोंके अतिरिक्त दलहन तथा तिलहनको भी सम्मिलित किया गया है, जो कि पोषणकी दृष्टिसे भी व्यक्ति, देश तथा समाजकी सुख-समृद्धिके लिये अनिवार्य है। इसलिये आवश्यकता इस बातकी है कि हम इन अन्नोंके महत्त्वको दृष्टिगत रखते हुए इनके उत्पादन-उपभोगको बढ़ायें तथा भारतीय सांस्कृतिक परम्परानुरूप अधिक उपलब्ध अन्नको, अपरिग्रहको ध्यानमें रखते हुए जरूरतमन्द लोगोंको उपलब्ध करायें। 'कलियुगमें प्राण अन्नमें ही बसते हैं' इस तथ्यको दृष्टिगत करनेपर तो अन्नकी महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है।

प्रश्नोत्तर

वैराग्यके विषयमें

प्रश्न—वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर—विषय पास रहनेपर भी उसमें राग न हो। इन्द्रियोंके समीप विषय रहनेपर भी उनके भोगनेकी रुचि न रहे तो इसे वैराग्य कहते हैं। ऐसा वैराग्य घरमें रहनेपर भी हो सकता है।

प्र०—त्याग किसे कहते हैं?

उ०—वस्तुको स्वरूपसे त्याग देना त्याग है।

प्र०—क्या त्यागके बिना भी वैराग्य हो सकता है?

उ०—हो सकता है।

प्र०—कैसे?

उ०—प्रेम होनेसे।

प्र०—भगवत्प्रेमके लिये वैराग्यकी आवश्यकता है या नहीं?

उ०—भगवत्प्रेम होनेसे वैराग्य होगा और वैराग्य होनेसे प्रेम होगा। इनका परस्पर अन्योन्य सम्बन्ध है—अविनाभाव-सम्बन्ध है। अर्थात् वैराग्यके बिना प्रेम नहीं होता और प्रेमके बिना वैराग्य नहीं होता।

प्र०—क्या साधु केवल एक जगहका अन्न खा सकता है?

उ०—नहीं, कभी नहीं। साधुको तो भिक्षा माँगकर ही अपना निर्वाह करना चाहिये। किसी एक स्थानपर बँध जानेसे साधुता नष्ट हो जाती है। धनियोंके अन्नमें अनेक प्रकारके दोष रहते हैं, उससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। मैंने हरिद्वारमें देखा कि एक सेठजीके मकानपर सेठानी तो पलंगपर लेटी हुई थी और महात्मा नीचे बैठे सत्संग करा रहे थे। ये क्या साधु हुए। साधु कभी किसी धनीके पास नहीं जायगा।

× × ×

१—किसीसे 'दो' यों कहना मरणके समान है। मर जाना भला है, किंतु वाणीद्वारा अथवा अन्य किसी चेष्टाद्वारा अपनी आवश्यकताकी सूचना देना अपना पतन करना है। साधुको भूख लगनेपर रोटी माँग लेनी चाहिये। मधुकरी वृत्तिसे रोटी माँगना तो गृहस्थीको कृतार्थ करना है। किंतु 'दो' इस शब्दके कहते ही शरीरमें स्थायीरूपसे रहनेवाले पाँच देवता चले जाते हैं। पाँच देव ये हैं—ह्री, श्री, धी, ज्ञान और गौरव। केवल माँगनेके संकल्पमात्रसे चेष्टामें मलिनता आ जाती है। माँगना बड़ा भारी पाप है।

२—कामिनी और कांचनसे बचना बहुत ही कठिन है। इनमें भी कामिनीसे तो बचना बहुत ही कठिन है। एक बार बंगाली बाबा मुझे सुनाते थे कि ऋषिकेशमें एक बहुत उच्चकोटिके महात्मा रहते थे। जब वे अपने पाञ्चभौतिक शरीरको त्यागने लगे तो उनके शिष्योंने कहा—'भगवन्! आज कृपा करके अपना अन्तिम उपदेश दीजिये।' आपने अपने शिष्योंसे कहा कि 'देखो, यदि लाहौरसे लेकर ऋषिकेशतक सुवर्णका पहाड़ हो तो मेरा मन उसे पानेके लिये चञ्चल न होगा। किंतु यदि मुझे स्त्रियोंमें बिठा दिया जाय तो आशा नहीं कि मेरा मन चञ्चल न हो।' उनके कहनेका अभिप्राय यही था कि कामिनीसे बचना बड़ा कठिन है।

३—विषयी पुरुषोंका संग विषयसे भी बुरा है। भोगी पुरुषोंके संगसे विषयोंकी बातें करते-करते तुम्हारा मन खराब हो जायगा। स्त्रियोंसे अनुराग करनेवालोंका संग तो बहुत ही हानिकारक है।

४—जहाँ वाद-विवाद है वहाँ न भगवान् ही हैं और न परमार्थ ही—

'सुने न काहू की कही, कहे न अपनी बात।
'नारायण' वा रूप में, मगन रहे दिन रात॥'

५—मुखसे जो कुछ बोले वह भगवच्चर्चासे भिन्न और कुछ न हो। फिर तुम्हें निन्दा-स्तुतिका अवसर कैसे मिल सकता है? सांसारिक बातें जहाँतक हो न बोले।

६—(१) दुनियाका चिन्तन न करो, (२) दुनियाकी बात न करो, (३) दुनियाकी क्रिया न करो। जो पुरुष इन तीनों नियमोंका पालन करता है, वही परमार्थ-साधन कर सकता है।

७—जबतक वैराग्य न हो तबतक ध्यानयोगमें तत्परता नहीं हो सकती।

८—दरिद्री वही है जो विषयोंमें फँसा हुआ है और धनी वही है जिसे किसी भी चीजकी इच्छा नहीं है।

दुनियाकी इच्छा छोड़ दो और सब सहन करो—यही महापुरुषोंका लक्षण है।

९—पशु वही है जो स्वभावको वशीभूत नहीं कर सकता। हमें यदि अफीम खानेकी आदत है और हम उसे त्याग न सकें तो हम पशु ही हैं।

१०—जीव पागलोंकी तरह घूम रहा है। इसका असली अनुराग किसीमें नहीं है। यह तो बावले कुत्तेकी तरह चारों ओर डोल रहा है। जो चीजें अनेक होती हैं उनमें पूर्ण अनुराग हो ही नहीं सकता। विषय अनेक हैं, इसलिये उनमें असली अनुराग नहीं हो सकता। अनुराग निरन्तर चिन्तनसे होता है। वाणीसे उसीका गुणगान करें, हृदयसे उसीका चिन्तन करें और नेत्रोंसे उसके सिवा और किसीको न देखें। **'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'**

११—इस प्रकार जगत् नहीं बस सियाराम-सियाराम ही देखे। सियाराम ही इष्ट रहे। उसके सिवा जो कुछ मनमें आये उसे हटाता रहे।

१२—संसारी बातोंसे सुख या शान्ति मिल जायगी—ऐसा सोचना मूर्खता है।

१३—सच्चे वैराग्यवान्‌को जो आनन्द प्राप्त होता है वह और किसीको प्राप्त नहीं हो सकता। ब्रह्मादिक भी उस आनन्दके लिये तरसते रहते हैं।

१४—इन्द्रियोंसे वैराग्य होनेपर भाव होता है और भावसे वैराग्य होनेपर ज्ञान। जबतक संसारसे, इन्द्रियोंसे और भावसे वैराग्य नहीं होता तबतक कोई जिज्ञासु नहीं हो सकता।

१५—चित्तका विकार तभी जा सकता है जब कि शरीरमात्रको मल-मूत्रका थैला समझा जाय।

१६—जन्म-जन्मान्तरोंसे हमारा विषयोंमें अनुराग है, इसीसे भगवान्‌में अनुराग नहीं होता। भगवान्‌में पूर्ण अनुराग हुआ कि संसारसे छुटकारा हो जाता है। जिस प्रकार निद्राका अन्त और जागरण—दोनों एक साथ ही होते हैं।

१७—श्रीअच्युत मुनिजी कहा करते थे कि त्याग करना तो सहज है, किंतु वैराग्य होना बहुत ही कठिन है। त्यागका अर्थ है किसी वस्तुको छोड़कर दूर चले जाना, किंतु पास अथवा दूर स्थित वस्तुके प्रति हृदयमें राग न रहना ही वैराग्य है। यह बहुत कठिन है।

१८—जगत्‌का कोई पदार्थ नित्य नहीं है। धन, विद्या, बुद्धि, गुण, गौरव आदि सभी मृत्युके साथ धूलिमें मिल जाते हैं।

१९—यदि परमात्मामें राग न हो और घर छोड़ दे, तो इसे वैराग्य नहीं कहते। जो आत्मारामी या भगवत्प्रेमी नहीं है वह दूसरोंसे व्यर्थ राग-द्वेष करेगा ही।

२०—यदि हमें भगवच्चिन्तन करते हुए संसारकी चीजें भी अच्छी लगती हैं तो समझना चाहिये कि अभी हम भगवत्प्रेमसे कोसों दूर हैं। जब हमें संसारकी बढ़िया-से-बढ़िया चीज देखकर भी घृणा हो तभी समझना चाहिये कि अब भगवान्‌का अनुराग हुआ। भगवद्भक्तको सभी चीजें तुच्छ जान पड़ती हैं।

२१—लँगोटी तक त्याग देना देहत्याग है और पञ्चकोशसे (अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश एवं आनन्दमयकोशसे) ऊपर उठ जाना गेहत्याग है।

२२—एक बार बादशाहने सुकरातसे पूछा—'आपके लिये कुछ जवाहिरात भेज दूँ?' सुकरातने कहा—'हम जवाहिरात क्या करेंगे? वे तो पत्थरके टुकड़े हैं। फिर बादशाहने पूछा—'कुछ रेशमी वस्त्र भेज दूँ?' सुकरातने कहा—'हमें उनकी आवश्यकता नहीं, वे तो कीड़ोंके मल हैं।'

२३—ममत्वसे ही दुःख होता है, ईश्वरसृष्टिके पदार्थोंसे दुःख नहीं हो सकता। ईश्वरसृष्टिके पदार्थोंमें ममत्व करना ही जीव-सृष्टि है। जैसे—अनेक मकान हैं, जिनके नष्ट होनेसे कोई दुःख नहीं होता, किंतु जो मकान खरीद लिया जाता है, उसकी यदि कोई एक ईंट भी निकालता है तो, ममत्व हो जानेके कारण बड़ा दुःख होता है। इसलिये किसी पदार्थमें ममत्व न करके सबको ईश्वरका समझते हुए सेवककी भाँति सबकी रक्षा और सँभाल करो। इससे उनके संयोग-वियोगमें दुःख नहीं होगा, क्योंकि सब पदार्थोंका बनानेवाला तो ईश्वर ही है। यदि कोई कहे कि यह मकान तो मैंने बनाया है, तो उसे सोचना चाहिये कि मिट्टी और

पत्थर आदि कहाँसे आये। ये तो मनुष्यकृत नहीं हैं। रेल, मोटर आदि भले ही मनुष्यके बनाये हुए हों, किंतु लोहा न होता तो ये कैसे बनते। अतः इन सब पदार्थोंका वास्तविक रचयिता और स्वामी तो ईश्वर ही है। इसलिये हमें इनमें ममता नहीं करनी चाहिये।

२४—आसक्तिपूर्वक खाना ही भोजनसम्बन्धी राग है, यह किसी भी पदार्थमें हो। अतः जिस वस्तुमें राग हो उसे नहीं खाना चाहिये। यही इस रागपर विजय प्राप्त करनेका उत्तम साधन है।

२५—प्रतिष्ठाने ही जीवको भगवान्‌से दूर कर रखा है। यदि दैवयोगसे प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगे तो उससे घृणा ही करनी चाहिये। सर्वदा दूसरोंको ही मान देनेकी चेष्टा करे।

२६—जबतक प्रवृत्तिका बोझा सिरपर लदा हुआ है, इष्टकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इष्ट तो निवृत्ति होनेपर ही प्राप्त होता है।

२७—जन्म और मृत्युका दुःख एक सहस्र बिच्छुओंके डंक मारनेके समान माना गया है। मनुष्य तो एक बिच्छूके डंक मारनेसे ही बेचैन हो जाता है, फिर अनेक बिच्छुओंके डंक मारनेकी पीड़ाके विषयमें क्या कहा जाय। यह तो अनुभवका ही विषय है। जन्मका दुःख तो मृत्युके दुःखसे भी बढ़कर है। यदि मनुष्य-शरीर पाकर भी जन्म-मरणका दुःख दूर न हुआ तो यह जन्म व्यर्थ ही रहा। इस जन्मका लाभ तो यही है कि जीव जन्म-मरणके दुःखसे छूट जाय।

२८—दृश्यमें प्रीति न रहना—यही असली वैराग्य है।

[श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश]

मोक्षदायिनी काशी

(डॉ० श्रीमती सौम्या माथुर)

भारतीय संस्कृतिमें प्राचीन कालसे ही काशीकी अनुपम, अप्रमेय, अप्रतिम विशिष्ट स्थिति रही है। काशी सर्वश्रेष्ठ शैवतीर्थ है, किंतु इसके साथ-ही-साथ यह वैष्णव, जैन और बौद्ध तीर्थोंके रूपमें भी श्रद्धेया रही है। समीप ही तथागत बुद्धने सारनाथमें प्रथम धर्मचक्र-प्रवर्तन किया। जैन धर्मके २३वें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथकी जन्मभूमि होनेका श्रेय काशीको ही है। शैवधर्ममें तो काशीकी महिमा अपरम्पार है। किंवदन्ती है कि काशीमें तिलभर भी भूमि लिंगरहित नहीं है। इसे वाराणसी, अविमुक्तेश्वर, विश्वेश्वर आदि पदोंसे भी व्यवहृत किया जाता है। स्वयं भगवान् शंकरने इसकी महिमामें कहा है—'मेरा यह वाराणसी-क्षेत्र परम गुह्य है एवं सर्वदा सभी प्राणियोंके लिये मोक्षका कारण है[१]।'

पुराणोंमें तो काशीकी महिमापर पूरे-पूरे खण्डों और अध्यायोंकी रचना की गयी है। यहाँ लिंग-रूपमें शिव साक्षात् विराजमान हैं। शिवपुराणकी चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें वर्णित द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग भगवान् शंकरका सातवाँ अवतार है (शि० पु० ३। ४२)। काशीपुरी शिवका गुह्यतम क्षेत्र है। प्रलयकालमें भी इसका नाश नहीं होता। उस समय भगवान् शंकर इसे अपने त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं और सृष्टिकालमें भूतलपर स्थापित कर लोगोंके उद्धारके लिये स्थित हो जाते हैं। इस जगत्‌में जो लोग अनेक प्रकारके दुःख-परम्परासे पूर्ण संसार-समुद्रके प्रवाहमें पतित होकर पुनः उससे निकलना चाहते हैं वे विचारशील पुरुष अन्य मार्गोंके होते हुए भी काशी-निवासरूपी मार्गका ही अनुसरण करते हैं—

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां संगो गङ्गाम्भः शिवपूजनम्॥

अर्थात् इस संसारमें यही चार बातें सार हैं—'काशीवास, महात्माओंका साथ, गङ्गाजल-सेवन और शिवपूजन।' इनमें किसी भी उपायको अपनाकर साधुजन काशीकी ही शरण लेते हैं।

१-इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम। सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा॥ (मत्स्यपु० १८०। ४७)

काशीकी तुलना गायत्रीसे करते हुए कहा गया है कि गायत्रीके समान कोई मन्त्र नहीं है और काशीके समान अन्य कोई पुरी नहीं है। काशी ही एक ऐसी पुरी है जो साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली है—

न गायत्रीसमो मन्त्रो न काशीसदृशी पुरी।
न विश्वेशसमं लिंगं सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥
अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि वै।
काशीं प्राप्य विमुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः॥

काशीमें तारकमन्त्रद्वारा मुक्ति मिलती है। भगवान् शंकर मृत्युको प्राप्त होनेवाले प्राणीको अन्त-समयमें तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे वह तत्काल मुक्त हो जाता है—

ब्रह्मज्ञानं तदेवाह काशीसंस्थितिभागिनाम्।
दिशामि तारकं प्रान्ते मुच्यन्ते ते तु तत्क्षणात्॥

काशी सप्तपुरियोंमें प्रधान पुरी है। अन्य छः पुरियाँ सम्यक् प्रकारसे ज्ञानोत्पादनद्वारा सालोक्य-मुक्ति प्रदान करती हैं। परंतु काशीमें जाने-अनजाने अथवा किसी कारणसे मृत्यु हो जानेपर मुक्ति ही मिलती है, पुनः गर्भवासकी यातना नहीं भोगनी पड़ती। मत्स्यपुराणके अनुसार वाराणसी पितृप्रिय नगरी है। यहाँ अविमुक्तके निकट किया गया श्राद्ध भुक्ति-मुक्तिप्रदायक है—

तथा वाराणसी पुण्या पितॄणां वल्लभा सदा।
यात्राविमुक्तसांनिध्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥

(२२। ७)

पद्मपुराणके अनुसार नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार तथा पुष्कर आदि क्षेत्रोंमें स्नान करने या निवास करनेसे मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता, परंतु काशीमें अवश्य मिलता है। इसीलिये काशी समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ है। यह धर्मक्षेत्र तथा तीर्थक्षेत्र है।

शिवपुराणके अनुसार काशी लोकमें कल्याण देनेवाली कर्मनाशिनी, मोक्ष-प्रकाशिका और ज्ञान देनेवाली नगरी है। काशीसे अन्यत्र जीवोंको सारूप्य-मुक्ति प्राप्त होती है। किंतु काशीमें सायुज्य-मुक्ति प्राप्त होती है। जिनकी कहीं गति नहीं उनकी वाराणसी पुरीमें गति होती है। महापुण्यमयी काशी परिक्रमा-पंचकोसी-यात्रा कोटि हत्याओंका नाश करनेवाली है—

अन्यत्र प्राप्यते मुक्तिः सारूप्यादिर्मुनीश्वराः।
अत्रैव प्राप्यते जीवैः सायुज्या मुक्तिसत्तमा॥
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी पुरी।
पञ्चक्रोशी महापुण्या हत्याकोटिविनाशिनी॥

(शिवपु० ३। ४२। २६-२७)

शिवपुराणमें शिवजी स्वयं पार्वतीजीसे कहते हैं कि मेरा परम गुह्यक्षेत्र वाराणसी मुक्ति देनेवाला है। सिद्ध पुरुष मेरे व्रतका आश्रय कर लोकोपकारकी इच्छासे नानारूप धारण करते हैं, जितेन्द्रिय आत्माको वशमें कर महायोगका अभ्यास करते हैं तथा मुक्तिफल देनेवाले योगमें तत्पर होते हैं। भक्त तथा विज्ञानी दोनों ही मुक्तिके भागी हैं। वे जीवन्मुक्त जहाँ भी मरते हैं, तत्काल मोक्ष प्राप्त करते हैं—

यो मे भक्तश्च विज्ञानी तावुभौ मुक्तिभागिनौ।
तीर्थापेक्षा च न तयोर्विहिताविहिते समौ॥
जीवन्मुक्तौ तु तौ श्रेयौ यत्र कुत्रापि वै मृतौ।
प्राप्नुतो मोक्षमाश्वेव मयोक्तं निश्चितं वचः॥

(शिवपु० ४। २३। ११-१२)

परम उत्तम अविमुक्त तीर्थमें सभी वर्ण, आश्रम, बालक, युवा, वृद्ध कोई भी मृत्युको प्राप्त हो, वह मुक्त हो जाता है। इस क्षेत्रमें ज्ञान, कर्म, दान, संस्कार, ध्यान, श्रेष्ठ जाति किसीकी अपेक्षा नहीं है। यहाँ जो भी मरता है निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है।

गरुडपुराणके अनुसार जो मनुष्य काशीमें रहकर सदैव पापोंमें रत रहता है, वह तीस हजार वर्षतक पिशाचयोनिको भोगता है, तत्पश्चात् वहीं उसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उसके बाद मोक्ष मिल जाता है—

वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा।
योनिं प्रविश्य पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम्॥
पुनरेव च तत्रैव ज्ञानमुत्पद्यते ततः।
मोक्षं गमिष्यते सोऽपि गुह्यमेतत् खगाधिप॥

लिंगपुराणके अनुसार काशीमें पिशाच-जन्म स्वर्गवाससे श्रेष्ठतर है—

कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम्।
न तु शक्रसहस्रत्वं स्वर्गे काशीपुरीं विना॥

तस्मात् संसेवनीयं हि अविमुक्तं हि मुक्तये।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं गतस्तत्र महातपाः॥

काशीमें मरनेके अनन्तर चार प्रकारकी मुक्तियाँ क्रमशः होती हैं—सालोक्य मुक्ति अर्थात् शिवलोकमें निवास करना, सारूप्य मुक्ति अर्थात् शिव-समान रूप प्राप्त करना, सामीप्य मुक्ति अर्थात् शिवके समीप रहना और सायुज्य मुक्ति अर्थात् शिवसे मिल जाना। काशी-क्षेत्रमें सालोक्य मुक्ति, वाराणसी-क्षेत्रमें सारूप्य मुक्ति, अविमुक्त-क्षेत्रमें सामीप्य तथा अन्तर्गृही-क्षेत्रमें सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है।

काशी-क्षेत्रमें भक्तोंद्वारा स्थापित लिंग सर्वकामप्रद तथा मोक्षदायक है। पाँच कोसतक विस्तृत इस क्षेत्रमें मरनेवाला प्राणी अमृतत्व प्राप्त करता है—

अत्र लिंगान्यनेकानि भक्तैः संस्थापितानि ह।
सर्वकामप्रदानीह मोक्षदानि च पार्वति॥
पञ्चक्रोशचतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम्।
समेताच्च तथा जन्तोर्मृतिकालेऽमृतप्रदम्॥

अविमुक्तेश्वरमें दिये गये विविध दानोंसे शुभ गति मिलती है। यहाँ उपवास रहनेसे सौत्रामणि यज्ञका फल मिलता है और निराहारसे सैकड़ों-करोड़ों कल्पोंमें भी पुनः संसारमें आगमन नहीं होता। अविमुक्त-क्षेत्रमें पापक्षय, कर्मबन्धनोंसे मुक्ति, अभीष्ट फलकी प्राप्ति, परागति और अपुनर्भव सुनिश्चित है।

कर्मकाण्ड तीन प्रकारके बन्धनमें डालनेवाले कहे गये हैं—संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध। पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मको संचित कहते हैं, जो शरीरसे फलरूपमें भोगे जाते हैं वह प्रारब्ध है और जो शुभ-अशुभ कार्य इस जन्ममें किये जाते हैं उनको क्रियमाण कहते हैं। इन कर्मोंमें प्रारब्धका विनाश केवल भोगसे होता है। संचित तथा क्रियमाण—इन दोनों कर्मोंका क्षय पूजन आदि विधिसे भी हो सकता है। समस्त कर्मोंका विनाश काशी बिना नहीं हो सकता। सब तीर्थ सुलभ हैं, किंतु काशीपुरी दुर्लभ है। यदि पूर्वजन्ममें आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया गया हो तो काशीमें आकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जो काशीमें जाकर गङ्गाजीमें स्नान करता है उसके क्रियमाण तथा संचित कर्मोंका विनाश हो जाता है। यह भी निश्चित है कि काशीमें मृत्यु हो जाय तो उस कर्मका क्षय हो जाता है।

इस प्रकार काशी सत्पुरुषोंको भुक्ति-मुक्ति देनेवाली है—

इत्यादि बहुमाहात्म्यं काश्यां वै मुनिसत्तमाः।
तथा विश्वेश्वरस्यापि भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥

(शिवपुराण)

कलियुगमें पापी मनुष्योंको मुक्ति देनेके लिये काशी ही एकमात्र शरण है। आध्यात्मिक उन्नति चाहनेवालोंको काशीका सेवन अवश्य करना चाहिये। यहाँ निवास करनेसे और तत्त्वज्ञानसे परा उन्नति होती है—

काशीवसत्या तत्त्वस्य संवित्या चोन्नतिः परा।
जायते सज्जना नूनं काशी संसेव्यतां मुदा॥

भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कहते हैं—हे देवि! 'हजारों जन्मोंमें योगका अभ्यास करनेसे जो मोक्ष प्राप्त होता है, वह परम मोक्ष यहाँ मरनेसे ही प्राप्त हो जाता है[1]।' उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचनमें काशीका सर्वविध मोक्षदायिनी होना स्पष्ट है। अतः मोक्षप्रदायक सर्वकल्याणप्रद इस काशी-क्षेत्रका सेवन प्राणिमात्रको अवश्य करना चाहिये। स्वयं भगवान् शंकर भी काशीका त्याग कभी भी नहीं करते, इसीलिये इसे महान् अविमुक्त[2]-क्षेत्र कहा जाता है।

जीवनका प्रत्येक क्षण श्रीप्रिया-प्रियतमके चिन्तनमें बीते, इसके लिये खूब सचेष्ट रहें। इस अनमोल जीवनके समाप्त होनेसे पूर्व ही श्रीप्रिया-प्रियतमको मनमें बसा लिया, तब तो सब कुछ कर लिया, नहीं तो सब कुछ करके भी जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो गया—यह सर्वथा सच्ची बात है।

१-जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात्। तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति॥ (मत्स्यपु० १८०। ७४)
२-विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन। महत् क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदं स्मृतम्॥ (मत्स्यपु० १८०। ५४)

आख्यान—

'सच्चिदानन्दलक्षण:'

भगवान् सद्रूप, चिद्रूप और आनन्दरूप हैं। प्रत्येक प्राणी प्रकृतिकी परिधिमें रहता है और उसका शरीर प्राकृतिक होता है। प्राय: लोग अपनी ही दृष्टिसे दूसरेको देखा करते हैं। अत: प्रकृतिमें रहनेवाला प्राणी अपनी ही तरह भगवान्‌को भी प्राकृतिक ही मानता है। इस अज्ञान-निवारणके लिये मार्कण्डेयस्मृतिने प्रारम्भमें ही स्पष्ट कर दिया है कि भगवान्‌का शरीर सत्-चित् तथा आनन्दस्वरूप होता है, न कि प्राकृतिक। अर्थात् भगवान् प्रकृतिकी तरह असत् नहीं होते, प्रकृतिकी तरह जड़ नहीं होते और प्रकृतिकी तरह सुख-दु:ख-स्वभाववाले भी नहीं होते। अपितु वे सदा सत्स्वरूप, ज्ञान-स्वरूप तथा आनन्दस्वरूप रहते हैं। भगवान् जब राम-कृष्णादिके रूपमें अवतार लेते हैं तब उनका वह विग्रह भी सच्चिदानन्द ही होता है न कि प्राकृतिक। भगवान् राम और कृष्ण जब मनुष्यरूपमें शरीर धारणकर पृथ्वीपर विचरण करते थे तो अधिकांश लोग उनको मनुष्यकी तरह हाड़-मांससे बने हुए प्राकृतिक शरीरधारी ही समझते थे, इस भ्रम—अज्ञानको दूर करनेके लिये मार्कण्डेयस्मृतिने भगवान्‌को **'सच्चिदानन्दलक्षण:'** कहा है।

संदेह होता है कि जब भीष्मने भगवान् कृष्णको बाण मारा तो उनकी देहसे जो रक्त गिरे, वे तो बिलकुल प्राकृतिक ही थे, फिर उनके शरीरको **'सच्चिदानन्दलक्षण:'** कैसे कहा जाय? इस तरहके और अनेक प्रश्न खड़े होते हैं। स्मृतिके इस तथ्यको बुद्धिगम्य करनेके लिये हमें एक प्रातिभासिक घटनाका आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। वह घटना इस प्रकार है—

एक राजा अपनी सभामें राजकाज देख रहे थे। सभा खचाखच भरी हुई थी। इतनेमें सभी लोगोंको आकाशमें घोड़ेकी हिनहिनाहट सुनायी पड़ी। लोगोंने आश्चर्यके साथ ऊपरकी ओर देखा। उन्हें दिखायी पड़ा कि एक प्रकाशमान घोड़ेपर एक देदीप्यमान देवता बैठा है, जिसके पीछे उसकी पत्नी बैठी हुई है। घोड़ा आकाशसे उतरता हुआ भूमिसे एक हाथकी ऊँचाईपर ही ठहर गया। उस देवता और देवीकी आभासे सारी सभा आलोकित हो गयी। सबने उठकर अतिथि देवताका स्वागत किया। राजाने विनम्रतासे पूछा—'भगवन्! आप कौन हैं? अपना परिचय दें और अपनी सेवाका सुअवसर प्रदान करें।'

देवताने कहा—'राजन्! तुम्हारी धर्मप्रियता और न्यायकारिताका सुयश सुनकर ही तुम्हारे पास एक काम लेकर आया हूँ। मेरे पीछे मेरी पत्नी बैठी हुई है। थोड़ी देरके लिये इसकी सुरक्षाकी समस्या मेरे सामने उपस्थित हो गयी है। देवासुर-संग्राम चल रहा है। मुझे वहाँ देवताओंकी सहायताके लिये जाना है। यही मेरी समस्या है। आपकी याद आयी और मैं विश्वस्त हूँ कि मैं अपनी पत्नीको आपके हाथोंमें सौंपकर पूर्णरूपेण आश्वस्त रह सकूँगा और मन लगाकर समरमें देवताओंकी सेवा-सहायता कर सकूँगा।

राजाने कहा—'किसीकी स्त्रीकी सुरक्षाका पूरा प्रबन्ध कोई अन्य पुरुष कैसे कर सकता है? इसलिये मैं कहता हूँ कि आप अपनी पत्नीकी सुरक्षाके लिये किसी औरको ढूँढ़ें। देवताने कहा—'मैंने बहुत सोच-समझकर ही यह निर्णय लिया है। अत: आपको ही इसकी सुरक्षा करनी होगी। आप और आपकी पत्नी—दोनों मिलकर मेरी भार्याकी भलीभाँति सुरक्षा कर सकेंगे। मैं और कहीं नहीं जाऊँगा।'

महारानी बुलायी गयीं। महाराजने देवीको अपनी पत्नीके हाथ सौंप दिया और राजकाजमें व्यस्त हो गये। देवता आकाशकी ओर उड़ गये और देखते-ही-देखते आँखोंसे ओझल हो गये। सारी सभा इस कौतुकको देखकर स्तब्ध थी। अभी सभाका कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ था, इसी बीच ऊपरसे एक कटा हुआ खूनसे लथपथ हाथ गिरा। लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा अभी जो देवता देवासुर-संग्राममें भाग लेने गया था, यह उसीका हाथ है। यह विचार चल ही रहा था कि दूसरा हाथ भी कटकर आ गिरा। एक क्षणके बाद ही दोनों पैर और धड़ भी आ गिरे। उन सारे अवयवोंने निश्चित-सा कर दिया कि अभी जो देवता ऊपर गये हैं उन्हींके ये सभी अवयव हैं। अन्तमें इसी बीच कटा हुआ सिर भी आ गिरा। अब किसीको यह संशय नहीं रह गया कि यह मृत शरीर उसी देवताका नहीं है, जिसने धरोहरके रूपमें अपनी पत्नीको राजाके यहाँ रख छोड़ा है। सारा अमात्यमण्डल और राजा भी इसी निर्णयपर पहुँचे।

विचार-विमर्शके बाद यह निश्चित किया गया कि देवताकी पत्नीको बुलाकर इस दृश्यको दिखा दिया जाय जिससे इस देव-शरीरके पहचानकी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाय। देवी बुलायी गयी। उसने भी सभासदोंकी पहिचानको ठीक बतलाया और राजासे प्रार्थना की कि मेरे लिये आप चिता बनवा दें, जिससे कि अविलम्ब अपने पतिसे मिल सकूँ। चिता लगा दी गयी। देखते-देखते सुन्दरताकी दोनों मूर्तियाँ खाक बनकर रह गयीं। सभी सभासद शोक-संतप्त हो गये। सभामें उदासी छा गयी थी और इस सभाको संचालनके पूर्व ही विसर्जित कर देना पड़ा।

ठीक इसी अवसरपर पुनः किसी घोड़ेकी हिनहिनाहट सुनायी पड़ी। लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा कि वही देवता प्रसन्न-मनसे आकाशमार्गसे सभामण्डपमें उतर रहा है। आते ही देवताने राजाको साधुवाद दिया और कृतज्ञताभरे शब्दोंमें कहा—'आपकी वजहसे मैं मन लगाकर युद्ध कर सका और अब विजय प्राप्तकर लौट रहा हूँ। अब आप मेरी पत्नीको मुझे सौंप दें।'

अब क्या हो? इस अघटित-घटनासे सभामें सन्नाटा छा गया। सबकी बोलती बंद हो गयी। निर्जीवकी भाँति सभी निश्चेष्ट हो गये। राजाके ऊपर तो सैकड़ों घड़ा पानी पड़ गया। इस दृश्यके कारण वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो विचलित हो गया। अब इस मौनको भंग करते हुए स्वयं देवताने कहा कि 'मेरी जीतसे आपलोगोंको प्रसन्न होना चाहिये, आप सब उदास क्यों बैठे हैं?' राजाने काँपते शब्दोंमें उसकी पत्नीके चितारोहणकी बात सुना दी। सुनते ही देवता क्रुद्ध हो उठा। बोला—'राजन्! मेरी पत्नीके प्रति तुम्हारे मनमें लोभ आ गया है। उसको रनिवासमें रख रखा है और कह रहे हो कि जलकर मर गयी।' सभासदोंने एक स्वरसे राजाके कथनका समर्थन किया। देवताने कहा—'आप सब तो राजाका ही पक्ष लेंगे। आप सभी झूठ बोल रहे हैं। मेरी पत्नी रनिवासमें बैठी हुई है और आप सब कह रहे हैं कि मेरी पत्नी जल गयी।' अन्तमें सबको कहना पड़ा कि यदि आपको विश्वास न हो रहा हो तो रनिवासमें जाकर अपनी पत्नीको ढूँढ़ निकालिये।

वह देवता रनिवासमें गया और हाथ पकड़कर अपनी पत्नीको बीच सभामें लाकर खड़ा कर दिया। वह दृश्य तो और भी विस्मयकारी था। राजासहित सभामें उपस्थित सभी लोग निरुत्तर हो गये। सबका सिर नीचा हो गया। कोई देवताकी ओर आँख उठाकर देखनेकी हिम्मत न कर सका। सभी अपनेको अपराधी मान रहे थे। सभामें घोर निस्तब्धता छा गयी थी। इसी बीच लोगोंने सुना। कोई कह रहा था—'महाराज! इनाम दीजिये।' तत्क्षण ही सबका ध्यान उस आवाजकी ओर आकृष्ट हुआ और जब राज्यके जादूगरकी तरफ दृष्टि पड़ी, तब लोगोंकी समझमें आया कि यह सब कुछ ऐन्द्रजालिक (जादूगर)-का खेल था। लोगोंकी जान-में-जान आ गयी। आश्चर्यान्वित राजाने क्रोधमिश्रित मुस्कानके साथ उसे अच्छा-सा पुरस्कार दिया।

यह प्रातिभासिक घटना गुरुपरम्परा-प्राप्त है। आदि शंकराचार्यने ऐन्द्रजालिककी इसी तरहकी घटना माण्डूक्योपनिषद्में प्रस्तुत की है। जहाँगीरने भी इस तरहकी ऐन्द्रजालिक घटना स्वयं अपनी आँखोंसे देखी थी। उसकी दृश्य-वस्तु कुछ भिन्न है, किंतु तत्त्व एक ही है। जहाँगीरने आइना-ए-जहाँगीरीमें लिखा है कि यदि बारह बजे दिनका प्रकाश न होता और मेरी इन दो आँखोंकी तरह सारी सभाकी आँखें इस घटनाको इसी तरहसे घटती हुई देखी न होतीं तो इसे सुनकर शायद मैं भी इस घटनापर विश्वास नहीं करता।

इस तरह ऐन्द्रजालिकद्वारा प्रस्तुत घटनाओंमें प्रातिभासिक सच्चाई होती है। वह देवता, वह देवी, वह घोड़ा—तीनों चेतन थे और घोड़ेके साज वगैरह सभी वस्तुएँ जड़ थीं। आकाशसे देवताका जो खूनसे लथपथ हाथ गिरा उसमें मांस और रक्त साफ दीखते थे। प्रश्न यह है कि क्या वे सचमुच मांस और रक्त थे। इसका साफ उत्तर है कि नहीं। वे देवी, देवता हाड़-मांसके बने पुतले दिखायी देते थे, पर वस्तुतः हाड़-मांसके थे नहीं। उसके हाथसे जो खून टपक रहा था वह वस्तुतः खून नहीं था। इसी तरह भगवान् भी राम-कृष्णके रूपमें आते हैं तो वे भी हाड़-मांसके बने दीखते हैं। पर उनका शरीर हाड़-मांसका होता नहीं। महाभारतके युद्धमें भीष्मके बाणोंसे गिरता हुआ रक्त दीखता था, किंतु वह प्राकृतिक खून नहीं था, क्योंकि भगवान्‌का शरीर तो सच्चिन्मय है तो ये सब भी सत्-चिन्मय ही थे। प्रातिभासिक शरीर और पारमार्थिक शरीरमें इतना फर्क है कि भगवान्‌का शरीर बिलकुल पारमार्थिक सत्य होता है और प्रातिभासिक शरीर बिलकुल असत्य होता है। प्रातिभासिक सत्ताके अतिरिक्त उसमें व्यावहारिक सत्ता भी नहीं होती तो पारमार्थिक सत्ता कैसे हो सकती है?

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

साधनोपयोगी पत्र

(१)

धोखेसे बचिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप साधुके वेषमें हैं, भगवान्‌की चर्चा करते हैं, इसलिये श्रद्धालु जनता आपमें श्रद्धा-भक्ति करे, उसके लिये तो यह उचित ही है। साधु-महात्माओंका सम्मान-सत्कार, उनका सेवन-पूजन महान् लाभदायक है। परंतु आपको दूसरी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। आपको जो सैकड़ों-हजारों नर-नारियोंके द्वारा मान-सम्मान, सेवा-पूजा, श्रद्धा-भक्ति प्राप्त हो रही है, आप वस्तुतः उसके अधिकारी हैं या नहीं! जिस महापुरुषत्व या महात्मापनकी भावनासे लोग ऐसा कर रहे हैं, वह महापुरुषत्व या महात्मापन यथार्थमें आपको प्राप्त है या नहीं? कहीं आप उन सरलहृदय श्रद्धालु नर-नारियोंकी सरलता, साधुता और अकृत्रिम श्रद्धाका अनुचित लाभ तो नहीं उठा रहे हैं। किसीके भी द्वारा अपनी सेवा-पूजा, श्रद्धा-भक्ति करानेका अधिकार तो महापुरुषको भी नहीं समझना चाहिये। सेवा-पूजा, श्रद्धा-भक्ति, मान-सम्मान करनेकी चीज है, करानेकी नहीं। फिर तो जो बनावटी महात्मा केवल वेश धारणकर ऐसा कराता है, वह तो अपने पतनका पथ ही प्रशस्त करता है।

यदि मनुष्य ऐसी स्थितिमें गहराईसे विचार करे, अपने जीवनके अबतकके कर्मोंका स्मरण करके देखे तो अधिकांशमें ऐसा पाया जाता है कि जिन श्रद्धाके धनी सरल-प्राण नर-नारियोंसे वह सेवा-पूजा करवाता है, जिनसे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होता है, वे नर-नारी उससे कहीं अच्छे हैं, उनके जीवनमें सचमुच उच्चता और यथार्थता है। वहाँ न कृत्रिमता है न अपनेको बड़ा बतानेकी दूषित वृत्ति!

अपने मनमें घुसकर देखना चाहिये कि धन-मान, सुख-आराम, भोग-विलास, यश-कीर्तिकी कितनी और कैसी प्रबल इच्छा मनमें है, इनके लिये कैसे मन ललचाता रहता है और इनके मिलनेपर कितना हर्ष और न मिलनेपर या नष्ट हो जानेपर कितना विषाद होता है। ऐसी स्थितिमें, दूसरे यदि कोई आपको निर्विकार, समदृष्टि, निष्काम महापुरुष बतलाते हैं और आप उसे स्वीकारकर उसका किसी प्रकार भी अनुमोदन करते हैं, तो बताइये यह उनको तथा अपनेको भी धोखा देना है या नहीं। इस धोखेसे बचिये।

आपके पत्रकी अन्यान्य बातोंसे कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। अतएव निवेदन यह है कि आप अपनेको देखिये, अच्छी तरहसे देखिये। यदि सचमुच आपके बाहरी (नकली) और भीतरी (असली) रूपमें अन्तर हो और आपने झूठ-मूठ ही नकली रूपको असली बताये जानेपर उसे स्वीकार कर लिया हो तो इस धोखेसे शीघ्र बचिये। अपने असली (भीतरी) रूपको ही अपना रूप मानकर उसके सुधारमें लग जाइये। लोगोंसे स्पष्ट कह दीजिये कि 'मैं ऐसा हूँ।' इसपर भी वे श्रद्धासे न मानें तो ऐसे जनसमूहको छोड़कर जहाँ आपको कोई न जानता हो, वहाँ चले जाइये और उपदेशादि देना छोड़कर नकली महात्मापनका चोगा उतार फेंकिये। महात्मापनका चोगा उतर जानेपर तो अभी आप जहाँ रहते हैं, वहाँ भी कुछ दिनोंमें मान-सम्मान घट जायगा। तथापि अलग जाकर अपने सुधारके कार्यमें शीघ्र लग जाना और भी उत्तम है। भगवान्‌का भजन कीजिये। आर्तभावसे उनको पुकारिये। उनके सामने अपने जीवनको बिना किसी छिपाव-दुरावके खोलकर रख दीजिये और बिना किसी शर्तके उनके चरणोंपर अपनेको डाल दीजिये। वे परम दयालु आपको अपनाकर वास्तविक महात्मा बना लेंगे। शेष भगवत्कृपा।

(२)

भगवान्‌की सब लीलाओंका अनुकरण नहीं हो सकता

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। भगवान्‌की अवतार-लीलाओंके सम्बन्धमें कुछ भी संदेह न करके ऐसा मानना चाहिये कि वे भगवान् हैं, सर्वसमर्थ हैं, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं, चाहे जैसे, चाहे जो, चाहे जब कर सकते हैं, उनके लिये सभी कुछ ठीक है। पर हमें अनुकरण उन्हीं बातोंका करना चाहिये, जिनके लिये उनका तथा उनकी ही वाणीरूप शास्त्रोंका आदेश हो। और सच बात तो यह है कि भगवान्‌की सारी लीलाओंका अनुकरण किया भी नहीं जा सकता।

भगवान्‌की लीलाएँ प्रधानतया तीन प्रकारकी होती

हैं—(१) लोकसंग्रह या लोकशिक्षाके लिये की जानेवाली आदर्श लीला, (२) अद्भुत, असम्भव जान पड़नेवाली ऐश्वर्यमयी लीला और (३) अन्तरङ्ग प्रेमी भक्तोंके साथ की जानेवाली प्रेममयी लीला।

[१] माता-पिताकी भक्ति, गुरुकी भक्ति, ब्राह्मण-भक्ति, सदाचार, देवपूजन, दीनरक्षण, इन्द्रियनिग्रह, ध्यान-पूजन, सत्यव्यवहार, निष्कामभाव, अनासक्ति, समत्व, नित्य आनन्दमें स्थिति आदि यथायोग्य अनुकरण करने योग्य आदर्श लीलाएँ हैं। इनका अनुकरण अपने-अपने अधिकारके अनुसार किया जा सकता है और करना ही चाहिये। भगवान्‌का आदेश भी है ऐसा करनेके लिये।

[२] अग्नि पीना, वरुणलोकमें जाना, अँगुलीपर सात दिनोंतक पर्वत उठाये रखना, कई प्रकारसे अपने विराट्-रूपके दर्शन कराना, अघासुर-शिशुपाल आदिके मरनेपर उनकी आत्मज्योतिको अपनेमें विलीन कर लेना, हजारों-लाखों मनुष्योंके साथ विभिन्न भावोंसे एक ही साथ मिलना, हजारों रानियोंके महलोंमें एक साथ रहना, दो जगह एक ही साथ एक ही समय आतिथ्य स्वीकार करना, सूर्यको ढक देना, असंख्य गोवत्स, गोप-बालक तथा उनकी प्रत्येक वस्तुके रूपमें स्वयं हो जाना, ब्रह्माजीको सबमें भगवत्स्वरूपके तथा महान् ऐश्वर्यके दर्शन कराना, अक्रूरको जलमें दर्शन कराना, मारकर असुरोंका उद्धार करना आदि ऐश्वर्यमयी लीलाएँ हैं। इनका अनुकरण साधारण मनुष्यके द्वारा सर्वथा असम्भव है।

[३] गोपियोंके घरोंसे माखन चुराकर खाना, चीरहरण, रासलीला और निकुञ्जलीला आदि अन्तरङ्ग मधुर प्रेमलीलाएँ हैं, जो भगवान् अपने आत्मस्वरूप पार्षदोंके तथा प्रेमियोंके साथ अनर्गल-अमर्यादरूपमें श्रुति-सेतुका भङ्ग करके अपने-आपमें ही किया करते हैं—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

रमानाथ भगवान्‌ने व्रजसुन्दरियोंके साथ वैसे ही खेल किया, जैसे बालक अपनी छायाके साथ करता है। इन मधुर लीलाओंका अनुकरण कदापि नहीं करना चाहिये। जो मूढ़ इनका अनुकरण करने जाता है, वह शास्त्र और धर्मसे पतित होकर घोर नरकका अधिकारी होता है।

असलमें इन तीनों प्रकारकी लीलाओंमें केवल पहली लीला ही अनुकरणके योग्य होती है। शेष दोनों लीलाएँ तो श्रवण, कीर्तन, मनन और ध्यान करके भगवान्‌के प्रति भक्ति तथा प्रेम प्राप्त करनेके लिये हैं। शुद्ध मनसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्‌की ऐश्वर्य और माधुर्यसे भरी लीलाओंका चिन्तन करना चाहिये और आदर्श लोकशिक्षामयी लीलाओंको अपने जीवनमें उतारना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(३)

साध्वी धर्मपत्नीके साथ दुर्व्यवहार करना बड़ा अशुभ है

प्रिय बहिन! सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। आपने अपने पतिके दुराचार, दुर्व्यवहार तथा अपने दुःख और जीवनके भारस्वरूप होनेकी बात लिखी सो वास्तवमें बड़ी ही दुःखजनक है। वे अपने दुराचारका दोष आपके मत्थे मढ़ते हैं, सो यह उनकी जबरदस्ती है। आपके बार-बार रोकने तथा उनके अनुकूल यथासाध्य रहनेपर भी वे पापमें प्रवृत्त होते हैं तो इसका सारा दोष उन्हींपर है। आपको इस मिथ्या पापके भयसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। आप चुप रह जाती हैं यह तो अच्छी बात है ही, पर नम्रतासे समझाना भी बुरी बात नहीं है। मेरी समझसे तो उनको सुधारनेके अमोघ उपाय हैं—(१) उनकी सच्चे मनसे सेवा करना, (२) भगवान्‌का भजन करना और (३) उनके सुधारके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करना। आपकी तपस्या और प्रार्थनासे ही उनका सुधार सम्भव है। आपको उनकी ओर न देखकर अपने स्वरूपकी ओर देखना चाहिये।

पुरुषोंके सम्बन्धमें क्या कहा जाय। वे जो साध्वी धर्मपत्नीको दुःख देकर पापाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, यह उनके भविष्यके लिये बड़ा ही अशुभ लक्षण है। उन्हें सावधान होकर शीघ्र अपना सुधार करना चाहिये। नहीं तो, वे तो नरकोंके भागी होंगे ही। समाजसे सदाचारका नाश हो जायगा। बीसवीं सदीके इस उच्छृंखलतापूर्ण युगमें स्त्रियाँ पातिव्रत्यके नामपर कबतक पुरुषोंका अत्याचार सहन करेंगी। शेष भगवत्कृपा।

बच्चोंको गायकी हड्डियोंके चूरेसे बनी टाफियाँ खिलाकर धर्म-भ्रष्ट किया जा रहा है

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

आर्थिक उदारीकरणके नामपर विदेशी बहुराष्ट्रिय कम्पनियोंको खुली छूट देनेका दुष्परिणाम इस प्रकार सामने आया है कि वे भारतीयोंकी धार्मिक भावनाओंकी तनिक भी चिन्ता किये बिना गायकी हड्डियोंके चूरेसे निर्मित टाफियाँ तथा अन्य खाद्य-सामग्री बेचकर हमारे धर्मको भ्रष्ट करनेपर उतारू होती जा रही हैं। विदेशी कम्पनियोंके टूथपेस्ट, शैम्पू तथा खाद्य तेलोंमें गायकी चर्बी, गायकी हड्डीके चूरे तथा अन्य अपवित्र वस्तुओंके मिश्रणका सनसनीखेज रहस्योद्घाटन पहले भी कई बार हो चुका है। बनस्पति घीके सम्बन्धमें हुई घटना सर्वविदित ही है। इसके बावजूद धर्मनिरपेक्ष कही जानेवाली केन्द्र सरकारके कानोंपर आजतक जूँ नहीं रेंगी, जिससे वह हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाओंका हनन करनेवाली इन विदेशी कम्पनियोंके विरुद्ध कार्यवाही करके उनके द्वारा निर्मित इन 'भ्रष्ट उत्पादनों' पर रोक लगाये और देशकी बहुसंख्यक हिन्दू जनताकी भावनाओंका सम्मान करे।

गाजियाबादके एक जागरूक पत्रकार अरुण कानपुरीने हालमें ही एक सनसनीखेज मामलेका रहस्योद्घाटन किया है कि हालैंडकी कम्पनी वैनेमैली 'फ्रूटेला टाफी' पूरे देशमें धड़ल्लेसे बेच रही है। इस टाफीमें गायकी हड्डियोंके चूरेका मिश्रण है जो टाफीके डिब्बेपर स्पष्टरूपसे अङ्कित है। उसमें हड्डियोंके चूरेके साथ-साथ डालडा, गोंद, एसेटिक एसिड, चीनी आदि भी फार्मूलेके रूपमें अङ्कित हैं। 'फ्रूटेला टाफी' ब्राजीलमें बनायी जा रही है। इसका मुख्यालय हालैंडके शहर जुडिआई (एस० पी०)-में है। यह आपत्तिजनक टाफी भारत-सहित संसारके अन्य अनेक देशोंमें धड़ल्लेसे बेची जा रही है।

श्रीअरुण कानपुरीको गाजियाबादके एक रेस्टोरेंटके मालिकने टाफीका बड़ा पैकेट लाकर दिखाया, जिसके रैपरपर स्पष्ट-रूपसे गायकी हड्डियोंका चूरा मिश्रित किया जाना अङ्कित था।

पता चला है कि पहले भी यह टाफी ब्राजीलसे भारतमें तस्करी करके लायी जाती थी तथा उसे विदेशी टाफीके रूपमें बड़े-बड़े होटलों, रेस्टोरेंटों तथा बड़ी-बड़ी दूकानोंमें बेचा जाता था। इधर हाल ही में सत्तारूढ़ शासकोंने 'आर्थिक उदारीकरण' के नामपर विदेशी कम्पनियोंको भारतमें पैर फैलानेकी पूरी छूट दे दी, तभीसे वैनेमैली नामक यह कम्पनी धड़ल्लेके साथ भारतके नगर-नगरमें 'फ्रूटेला टाफी' के पैकेट पहुँचाकर गोभक्त हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाओंको खुला आघात पहुँचा रही है।

इस मर्माघातसे व्यथित अनेक गोभक्त धर्माचार्योंने गायकी हड्डियोंसे टाफी बनानेवाली इस विदेशी कम्पनीके विरुद्ध मामला चलाने तथा भारतमें इसके प्रवेशपर अविलम्ब प्रतिबन्ध लगाये जानेकी माँग की है। केन्द्र सरकार तथा इन विदेशी कम्पनियोंको यह नहीं भूलना चाहिये कि १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य-समरका श्रीगणेश कारतूसोंमें गायकी चर्बी लगाये जानेके मुद्देको लेकर ही हुआ था। उस समय विदेशी विधर्मी अंग्रेजोंने भारतीय सैनिकोंको दिये जानेवाले कारतूसोंमें गायकी चर्बीका प्रयोग कर उन्हें धर्मभ्रष्ट करनेका षड्यन्त्र रचा था। मंगल पाण्डेय-सदृश गोभक्त सैनिकोंने गायकी चर्बी लगे कारतूसोंको छूनेसे इनकार कर अंग्रेजी शासनके विरुद्ध विद्रोहका बिगुल बजा दिया था। इस प्रकार अनेक आध्यात्मिक विभूतियों एवं संत-महात्माओंको जब यह पता चला था कि विदेशी कपड़ोंमें गायकी चर्बीका उपयोग किया जाता है तो उन्होंने विदेशी कपड़ोंका सर्वथा बहिष्कारकर खादी पहननेका संकल्प लिया था। यदि भारतकी गोभक्त जनता जान गयी कि गायकी चर्बी, गोमांस तथा हड्डियोंका खाद्य-पदार्थोंमें उपयोग करके उनको धर्म-भ्रष्ट किया जा रहा है तो फिर ऐसी क्रान्ति होगी कि पूरा देश उस क्रान्तिकी आगमें झुलसनेसे बच नहीं पायेगा। अत: समय रहते सत्तारूढ़ उत्तरदायी राष्ट्रनायकोंको इस राष्ट्रिय अस्मिताके प्रश्नपर विचारकर शीघ्रातिशीघ्र कोई ठोस कदम उठाना चाहिये।

हम गोभक्तोंका भी यह कर्तव्य है कि इन विदेशी कम्पनियोंके उत्पादोंका हम बहिष्कार करें तथा बच्चोंको इन खाद्य-पदार्थोंसे दूर रहनेको प्रेरित करें।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भगवान् किसके हृदयमें नहीं हैं?

गुजरातकी एक सेवा-संस्था 'सद्विचार-परिवार' के अध्यक्ष श्रीहरिभाई पंचालसे किसी संदर्भमें मेरी मुलाकात हुई। बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने अपनी संस्थाका परिचय देते हुए मुझे बताया कि सन् १९६३ से हमारी संस्थाकी बहिनें गुजरातकी अधिकांश जेलोंमें जाकर सजा-प्राप्त कैदियोंको राखी (रक्षाबन्धन) बाँधती हैं। जिससे कैदियोंमें सौहार्द्रपूर्ण भावनाओंका विकास हुआ है और इसके अच्छे परिणाम भी प्राप्त हुए हैं। इसके साथ ही हरिभाईने यह भी बताया कि गुजरातमें फाँसीपर चढ़ाये जानेवाले प्रत्येक कैदीके पास अन्तिम दो-तीन दिनतक हम लोग उसके साथ रहते हैं और उसके अन्तिम समयको सुधारनेका यथासाध्य प्रयास करते हैं। मैंने कौतूहलवश इस सम्बन्धमें विस्तारसे जाननेकी जिज्ञासा प्रकट की। तब उन्होंने उदाहरणके रूपमें फाँसीकी सजा-प्राप्त एक कैदीसे मिलनेकी घटनाका एक रोचक विवरण सुनाया। जिसे हम 'कल्याणके पाठकोंके' निमित्त यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

हरिभाईजी कहते हैं—सन् १९६३ के अगस्त मासकी घटना है। जनकल्याणकारिणी सेवा-संस्था 'सद्विचार-परिवार' की तरफसे हमने जेलोंमें प्रथम रक्षाबन्धनका आयोजन किया था, जो जनसामान्यके लिये बड़े ही कौतूहलका विषय था। जब बहिनोंने राखी बाँधना शुरू किया तो कितने ही कैदियोंकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी। भातृप्रेमकी सहज भावुकतामें राखी बाँधनेवाली बहिनोंकी भी आँखें सजल हो गयी थीं, कितने कैदी तो अपने पास उपलब्ध बहुमूल्य उपहार आदि बहिनोंको देनेके लिये आतुर हो रहे थे और बहुत कैदी तो अपनी बहिनोंको सच्चे हृदयसे अत्यन्त भाव-विह्वलतासे कोटिशः आशीर्वाद देते हुए फूले न समाते थे। उसीमें जब एक कैदीने एक बहिनको अपने हाथकी घड़ी देनी चाही तो उस बहिनने कहा—'हम बहिनें तुम भाइयोंसे उपहारस्वरूप कोई भौतिक वस्तु लेने नहीं आयी हैं और न ही हमारी संस्थाका यह उद्देश्य है। हाँ, यदि तुम कुछ देना ही चाहते हो तो वे सारे दुर्गुण—शराब, चोरी, डकैती, हत्या और ऐसे ही और भी समाजविरोधी, धर्मविरोधी एवं नैतिकता तथा मानवतासे परे जो दुराचरण तुझमें हों—वे सब हमें समर्पित कर दो। इसके अतिरिक्त हमें कुछ नहीं चाहिये।' यह सुनकर उस कैदीने कहा—'बहिन! आजतक तो हमने दुनियाको केवल लूटा ही है, लेकिन आज वह सब कुछ तुम्हें समर्पित करनेकी (अर्थात् उन दुर्गुणोंके परित्याग करनेकी) प्रतिज्ञा करता हूँ, जो तुमने अभी माँगा (कहा) है।' इसी प्रकार अन्य कैदी भाइयोंने भी वचन देकर प्रतिज्ञा की।

इसी वर्ष १६ सितम्बरके दिन एक कैदीको फाँसी दिये जानेका हुक्म हुआ। यह आदेश सुनाते हुए जेल-अधिकारियोंने उससे पूछा—'तुम्हारी कोई विशेष इच्छा हो तो बताओ।' उसने कहा—'मेरी कोई विशेष इच्छा तो नहीं है, हाँ, यदि सम्भव हो तो राखी बाँधनेवाली उस बहिनको बुला दीजिये।' उपर्युक्त संस्थाका एक मुख्य सदस्य होनेके नाते जेल-सुपरिंटेंडेंटने मुझे फोनसे इसकी सूचना दी। मैं तुरंत ही अपने दो साथियोंके साथ वहाँ पहुँच गया। साथमें एक टेपरिकॉर्डर और कुछ भजनोंके कैसेट भी लेता गया। मनमें बहुत उलझन थी कि हम उससे क्या बात करेंगे। तभी जेलके सुपरिंटेंडेंट महोदयने उससे हम लोगोंका परिचय करवाया—'यही भाई उन बहिनोंको राखी बाँधनेके लिये लाये थे।' यह सुनते ही वह आत्मीयतापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए अश्रुपूरित नेत्रोंसे कहने लगा—'भाई साहब! उतना प्यार आजतक किसीने नहीं दिया। उसने मेरी सगी बहिन-जैसा प्रेम दिया था। उसकी बाँधी हुई राखी अभीतक मैंने रख रखी है और अब आप लोग भी जो कहेंगे मेरे लिये हितकारी ही होगा।' लेकिन हमने देखा उसके चेहरेपर साक्षात् मृत्युकी छाया मँडरा रही थी। फिर भी हमने कहा—'हिम्मत रखो, भगवान् जो भी करता है वह सब कल्याणप्रद होता है।' उसने बड़े ही आश्चर्यके साथ कहा—'अरे भाई साहब! दो दिन बाद मुझे फाँसीपर लटकाकर कुमौत मार दिया जायगा, इसमें मेरा क्या भला होगा?' वास्तवमें प्रश्न तो मन-मस्तिष्कको झकझोर देनेवाला और अत्यन्त मार्मिक था, कुछ भी जवाब देते न बनता था। पर

भगवत्कृपासे मेरे मुँहसे निकल पड़ा—'*अन्त मति सो गति*' मौत या कुमौत उस समयकी मति (चिन्तनधारा)-पर निर्भर करती है और इस दुनियामें तू ही एक ऐसा सौभाग्यशाली है, जिसे मालूम है कि मेरी मौत १६ सितम्बर दोपहर ११ बजे होनेवाली है। यह तो साक्षात् सुमौत या सुगति ही है। सौभाग्यसे ऐसी सुविधा तो केवल राजा परीक्षित्को प्राप्त हुई थी, जिसे मालूम हुआ था कि सात दिनके बाद तक्षकके रूपमें उसकी मौत आनेवाली है।

अत: उसने ऐसी पूर्व तैयारी की कि उसे सानुकूलता प्राप्त हुई। उसने इस सौभाग्यका पूरा-पूरा लाभ उठाकर प्रभु-मिलन-हेतु विधिवत् साधना शुरू कर दी—राज्यका परित्याग कर दिया, नैमिषारण्यमें जाकर अनशन कर दिया। उसकी मनोभावना जानकर ज्ञाननिष्ठ श्रीशुकदेवजीने परम मोक्षदायक भागवत महापुराणका सप्ताह-पारायण सुना दिया। फलस्वरूप जब सातवें दिन देवताओंने अमृत-कुम्भके साथ प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा—'हे परीक्षित्! यह अमृत-पान करो, तक्षक तुम्हारा कुछ नहीं कर पायेगा।' उस समय परीक्षित्ने यही कहा था—'हे देवताओ! मैंने भागवत-रसरूपी अमृतका पान कर लिया है जो मृत्युरूप मोक्षका प्रत्यक्ष प्रदाता है, इसलिये स्वर्गके इस अमृतकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह तो मुझे मृत्युरूप मोक्षसे हमेशा-हमेशाके लिये दूर कर देगा।' यह थी 'अन्त मति' जिससे परीक्षित्को परमधाम प्राप्त हो गया। अत: तुम भी परीक्षित्की भाँति अपनी मृत्यु-तुल्य परमतत्त्वके स्वागतकी तैयारीमें संलग्न हो जा। अभी तो तुम्हारे पास पचास घंटे अर्थात् तीन हजार मिनट हैं। क्षणमात्रके भगवत्स्मरणसे अजामिलको भगवत्प्राप्ति हो गयी थी। तुम्हारे पास तो तीन हजार मिनट हैं। यह सुनते ही उस कैदीका रोम-रोम खिल उठा। उसने कहा—'इसका मतलब, मेरी मौत भी कल्याणकारिणी हो सकती है। इसके लिये मुझे क्या करना चाहिये। मेरे लिये तो शुकदेव आप ही हैं, बताइये न मैं क्या करूँ?'

मैंने कहा—यदि ऐसी बात है तो आजतकके किये गये समस्त पापोंको सबके सामने जाहिर कर दो, ऐसा करनेसे तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो जायँगे। अन्त-समयमें उन बुरे कर्मोंका स्मरण तुम्हें परेशान नहीं करेगा। उसके बाद उसने जो कुछ सुनाया वह बहुत ही भयावह था। उसने कहा—'मुझे एक खूनके मुकदमेमें फाँसीकी सजा दी गयी है, परंतु मैंने एक नहीं सात खून किये हैं और मैं बहुत बड़ा पापी हूँ।' तब मैंने उससे पूछा—'अरे! तू दीखता तो है २४-२५ वर्षका, इतनी कम उम्रमें इतने खून कैसे कर दिये। उसने पुन: बताया—

'मैं दामनगर गाँवका रहनेवाला हूँ, चरवाहाका बेटा हूँ। जब मैं छोटा था, तब अन्य चरवाह-मित्रोंके साथ गाय-भैंस चराने जाया करता था। बादमें हमारी एक गुंडा-टोली बन गयी। फलस्वरूप हम अपने गाय-भैंसोंको किसीके भी खेतमें चरनेके लिये छोड़ देते थे और विरोध करनेपर हमेशा मार-पीटके लिये तैयार रहते थे। मैं उस गुंडा-पार्टीमें और लोगोंकी तुलनामें शारीरिक दृष्टिसे हृष्ट-पुष्ट एवं अधिक हिम्मतवाला था। इसलिये कोई भी कठिन काम मेरे जिम्मे हुआ करता था। इसी तरह समयानुसार मैंने सात खून कर दिये, पर किसीमें भी पकड़ा नहीं गया। लेकिन संयोगवश एक राज्य-कर्मचारीके सम्बन्धीकी हत्यामें मैं पकड़ा गया और उसी केसमें मुझे यह सजा प्राप्त हुई है।' इतना कहनेके बाद वह प्रफुल्लित होकर जो भजनोंके रिकार्ड्स हम लोग ले गये थे, उसको सुननेमें मशगूल हो गया।

ये सभी बातें सुननेके बाद वहाँ उपस्थित एक सीनियर जेलरने मुझसे कहा—'हरि भाई! यह तो आपने चमत्कार कर दिया। यह कैदी कितने सालोंसे हमारे यहाँ 'अंडर ट्रायल' है, पर कभी भी इसने ऐसी कोई बात नहीं बतायी। पर आपके साथ दो घंटेकी बातचीतमें ही इसने अपने सारे गुनाहोंको कबूल कर लिया, वास्तवमें यह बड़े ताज्जुबकी बात है। लेकिन इस सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात आपसे कहनी है। थोड़े दिनों पहले इस कैदीके कुछ मित्र इससे मिलने आये थे, उनसे इस कैदीने यह प्रतिज्ञा करायी है कि 'जिसके कारण मुझे फाँसी हो रही है, उसके पूरे परिवारका नामोनिशान तक नहीं रहना चाहिये।' अब चूँकि इसकी फाँसी तो होगी ही, लेकिन आगे इस खूनका सिलसिला भी यहीं समाप्त हो जाय, इसके लिये आपको कोई युक्ति सोचनी चाहिये।

तदनन्तर मैंने अत्यन्त गम्भीर मुद्रामें उस कैदीके पास जाकर पूछा—'भाई! तुमने बहिनोंको राखीके बदलेमें क्या दिया था? उसने तुरंत ही कहा—'अपनी सारी बुराइयोंको छोड़नेका वचन'। मैंने पुन: कहा—'लेकिन क्या तुम ऐसा कर पाये हो?' उसने कहा—'भाई साहब! बात स्पष्ट करें,

मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ।' मैंने कहा—'तू तो दुनियाके जेलसे बाहर जा रहा है, अब तू दुःखी बहिनोंके आँसू पोछेगा या उन्हें लहूकी आँखोंसे रुलायेगा?' मैंने सुना है, थोड़े दिनों पहले अपने उन मित्रोंसे कहा है कि 'जिसके कारण तुम्हें फाँसी हो रही है, उनके सारे परिवारको समाप्त करना है।' अब तुम्हीं बताओ यह खूनका सिलसिला ऐसे ही जारी रहा तो क्या माताएँ, बहिनें खूनके आँसू नहीं रोयेंगी तो और क्या करेंगी। क्या ऐसी ही सौगात राखीके बदलेमें बहिनोंको देनेवाला था? इतने पाप कम हैं जो नये लेकर जा रहा है? अब तो वह जडवत् मेरी तरफ देखता ही रह गया। वह मेरे पैरोंपर गिरकर रोने लगा और बोला—'भाई साहब! यह तो मुझसे बहुत बड़ा अनर्थ हो गया। अब मैं क्या करूँ? इसके समाधानका कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। मैं तो मानवके रूपमें साक्षात् दानव हूँ। मैंने उन पवित्र बहिनोंको ठगा है, मुझसे बड़ा अधम और कौन होगा?'

परंतु ईश्वरीय संयोग ही कहिये कि उसके वे मित्र दूसरे ही दिन जेलमें उससे मिलने आ गये। वह कैदी बहुत प्रसन्न हुआ और उन लोगोंसे स्पष्टरूपसे कह दिया—'यदि मेरा कल्याण चाहते हो, बहिनोंकी राखीकी मर्यादा रखना चाहते हो, भगवान्‌के अस्तित्वमें विश्वास रखते हो और साथ ही मरनेके बाद एक हितैषीके रूपमें मेरी आत्माको शान्ति प्रदान करना चाहते हो तो आजसे तुम लोग किसी भी प्रकारकी हिंसा, परपीड़ा या अवाञ्छनीय कृत्य नहीं करोगे, यही हमारी अन्तिम इच्छा है। अब शेष समय मानवमात्रकी सेवा एवं भगवद्भजनमें बिताना चाहिये। इसके बाद उसने भजनोंके कैसेट सुने और भगवान्‌का प्रसन्नतापूर्वक नामस्मरण करता हुआ फाँसीपर लटकनेके लिये वैसे ही तैयार हो गया, जैसे कोई भक्त भगवान्‌से मिलनेके लिये तैयार खड़ा रहता है।

इतना कहनेके बाद वह तेज कदमोंसे फाँसीके फंदेकी तरफ बढ़ता चला गया और अधिकारियोंको सम्बोधित करते हुए कहा—'अब और देर क्यों करते हो? मेरे एवं भगवान्‌के बीचकी दूरी बढ़ती जा रही है, जल्दी करो। 'जय श्रीराम!' इस समय वह साक्षात् धर्ममूर्ति ही प्रतीत हो रहा था। इस मानवमूर्तिके हृदय-परिवर्तनसे यह बिलकुल स्पष्ट होता है कि भगवान् सबके हृदयमें विराजमान हैं।

—नथमल केडिया

(२)

गोमूत्रने मुझे अनेक शारीरिक रोगोंसे मुक्ति दिलायी

कई वर्ष पुरानी बात है। ग्रह-दशा या किसी पूर्व जन्मके संस्कारके कारण मैं शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिसे बीमारियोंके चंगुलमें फँसता चला गया था। जिसके कारण मैं अहर्निश अशान्त एवं अव्यवस्थित-चित्त रहा करता था और साथ ही मेरी चिन्ता बढ़ती जा रही थी। चौबीसों घंटेकी इस चिन्ताने मेरे शरीरको जर्जर करके रख दिया था। भोजनके बाद सोनेका प्रयास करता, किंतु स्वप्नोंसे घिर जाता।

पूरा शरीर रोगोंका घर बन गया था। प्रायः घुटनोंमें दर्द रहने लगा। रात-दिन सिरमें पीड़ा रहती। पाचनशक्ति नष्टप्राय हो चुकी थी। स्मरणशक्ति लुप्त हो रही थी। मानसिक संतुलन बिगड़ जानेसे हर समय क्रोधका आवेश रहता, जिससे मैं अधिकाधिक चिड़चिड़ा हुआ जा रहा था। चिन्ता और चिड़चिड़ेपनसे शरीरका रंग बिलकुल काला पड़ गया था। शरीरमें खुजली होने लगी थी। पूरा शरीर अस्थिमात्रका ढाँचा बन गया था।

मैंने शरीरके अनेक अवयवोंकी डॉक्टरी जाँच करायी, किंतु कोई भी बीमारी पकड़में नहीं आयी। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होम्योपैथिक तीनों प्रकारकी दवाएँ लीं, किंतु रोगका निवारण सम्भव नहीं हो सका। गणेशपुरी (महाराष्ट्र) जाकर गन्धकके पानीसे कई दिनोंतक स्नान किया, लेकिन चर्मरोगपर भी नियन्त्रण नहीं पाया जा सका।

जीवनसे निराश होकर मैंने 'हारेको हरिनाम' का सहारा लिया और तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। द्वारका एवं रामेश्वरकी तीर्थयात्राके बाद बदरीनाथ, केदारनाथ, गङ्गोत्तरी आदिकी यात्रा करता हुआ ऋषिकेश पहुँचा। वहाँ एक ऐसे सज्जनसे भेंट हुई, जिन्होंने आश्वासनपूर्वक बड़ी ही दृढ़ताके साथ कहा—'आप गोमूत्रका प्रयोग करें, समस्त व्याधियोंसे पूरी तरह मुक्त हो जायँगे।' उन्होंने मुझे बताया कि एक कप चायके बराबर गोमूत्रका सेवन किया जाय। उसे कपड़ेकी आठ तह करके छान लेना चाहिये और धीरे-धीरे अभ्याससे इसे बढ़ाकर पाव-डेढ़ पाव तक लिया जा सकता है। कुछ गोमूत्रको धूपमें रखकर अगले दिन उसे शरीरपर मालिश

करनेसे विविध रोगोंसे छुटकारा मिल सकता है।

मैंने पहले दिन एक कप गोमूत्र पीया तो मुझे उलटी हो गयी। मैंने दृढ़ संकल्प लेकर दूसरे दिन फिर पीया तो वह पेटमें जाकर पच गया। सूर्यकी किरणोंके सामने रखे गोमूत्रसे पूरे शरीरमें मालिश भी प्रारम्भ कर दिया। इस मालिशसे शरीरकी कड़ी चमड़ी नरम होने लगी।

गोमूत्रने कुछ ही दिनोंमें अपना चमत्कार दिखाना शुरू कर दिया। शरीरसे कफ निकलना शुरू हो गया। खाँसते-खाँसते मेरा बुरा हाल हो जाता था। गोमूत्रके सेवनसे खाँसी भी कम होती गयी। मैंने पारिवारिक चिकित्सकसे जाँच करायी तो उन्होंने बताया कि आपके स्वास्थ्यमें काफी बदलाव है तथा रोगोंपर तेजीसे नियन्त्रण हो रहा है। किंतु उन्होंने कुछ दिन गोमूत्र-सेवन रोक देनेका सुझाव दिया। मैं दुबिधामें पड़ गया कि क्या करूँ? ऐसी स्थितिमें मैंने *'आखिर-अन्तिम राम-सहारा'* इस संतवाणीका सहारा लिया। मुझे उसी समय एक संतद्वारा गोमाताके दुग्ध तथा गोमूत्रके महत्त्वपर दिये प्रवचनकी कुछ पंक्तियोंने निरन्तर गोमूत्र-सेवन करते रहनेको प्रेरित किया। उसी प्रेरणाके वशीभूत हो मैं प्रतिदिन गोमूत्र, गोदुग्ध तथा गायके दूधका दही-मट्ठा आदि प्रयोग करने लगा। एक वर्षके इस निरन्तर प्रयोगसे मेरा शरीर समस्त रोगोंसे पूरी तरह मुक्त तो हो ही गया मानसिक तनाव, क्रोध तथा अन्य मानसिक व्याधियोंसे भी गोमाताने मुझे मुक्ति दिला दी।

मैंने यह भी अनुभव किया कि देशी भारतीय गायका मूत्र विशेष गुणकारी होता है। बच्चोंकी घुट्टीमें यदि गोमूत्रकी कुछ बूँदें मिलाकर पिलायें तो बच्चा अनेक रोगों—विशेषकर पेटके विकारसे मुक्ति पा लेता है। लगातार गोमूत्रका सेवन करनेसे रक्तका दबाव स्वाभाविक हो जाता है।

गोमूत्र पेटके समस्त विकारों, लीवरकी खराबीको दूरकर शरीरमें स्फूर्ति पैदा करता है।

गोमूत्र सबेरे खाली पेट सेवन करे तथा उसके बाद एक घंटेतक कुछ न ले।

मैं गौ माताकी कृपासे पूरी तरह नीरोग होकर कई वर्षोंसे अपनी जन्मस्थली बिहारका त्यागकर उत्तर भारतके प्रमुख तीर्थ गढ़मुक्तेश्वरके वृजघाट-स्थित माँ गङ्गाके तटपर रहकर साधनामें लीन हूँ। गङ्गा माँके स्नान, उसके पावन जलके सेवन एवं एकान्तवाससे मुझे जो हार्दिक संतोष प्राप्त हो रहा है उसका मैं वर्णन नहीं कर पाता। क्योंकि यह सब गोमूत्रके सेवन एवं गोमाताकी कृपाका ही फल है। किंतु उस समय मुझे हार्दिक वेदना होती है, जब मैं गोवंशकी नृशंस-हत्या किये जानेकी छूट तथा गोमांससे विदेशी मुद्रा कमाये जानेकी बढ़ती प्रवृत्तिके समाचार सुनता हूँ। गोवंश-जैसी अमूल्य निधिके साथ यह अत्याचार अविलम्ब बंद किया जाना चाहिये। इसीमें हम सभीका कल्याण है। (श्रीसोहनलालजी अग्रवाल)

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

(३)

गोसेवाके फलस्वरूप प्राण-रक्षा

यह घटना लगभग १६ वर्ष पूर्वकी है। मैं देशनोक करणीधामका निवासी हूँ। मात्र २१ वर्षकी छोटी उम्रमें मुझे दमाकी शिकायत हो गयी थी और लगभग ३५ वर्षतक इस बीमारीसे पीड़ित रहा हूँ। श्रीकरणी-गौशालामें मैं करीब २० वर्ष उपमन्त्री रहा हूँ और अब ५ वर्षोंसे अध्यक्ष-पदपर हूँ।

घटना विक्रम-संवत् २०३६ फाल्गुनकी है। मैंने नित्यकी भाँति भगवान्‌का नाम लेकर रात्रि ८ बजे गोशालाके मन्त्रीके साथ चंदेके लिये प्रस्थान किया। लेकिन जब मैं घरसे रवाना हुआ तो अचानक मेरी तबीयत खराब हो गयी। मेरी बिगड़ती स्थिति देखकर मेरी माताजीने मुझसे कहा कि तुम शीघ्र ही इलाजके लिये जयपुर चले जाओ, और मैं जयपुरके लिये रवाना हो गया। रास्तेमें सोचा, पहले मन्दिरमें माताजीके दर्शन करता चलूँ।

जब मैं करणी माताजीके मन्दिर दर्शनार्थ पहुँचा तो उस समय ज्योति जल रही थी। मैं श्रद्धावनत हो माँकी स्तुतिमें ध्यानमग्न हो गया और जब ध्यान टूटा तो श्रीमाँके चरणोंमें स्वच्छ धवल देदीप्यमान एक ज्योतिःपुञ्जका दर्शन हुआ, जिसे लोग बहुत शुभ मानते हैं। मनमें ऐसा लगने लगा कि कोई चमत्कार होनेवाला है। फिर वहाँसे मैं जयपुरके लिये चल दिया। रेलमें बुखार होने लगा तथा दमाकी शिकायत भी बढ़ती गयी और जयपुर पहुँचते-पहुँचते बुखार १०४ तक पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर तीन दिनतक अच्छे-अच्छे डॉक्टरोंसे इलाज कराया, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। तीन दिन बाद मैंने बीकानेरके एक विशेषज्ञ डॉक्टरको

दिखाया, फिर भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रही। अब मुझे ऐसा महसूस होने लगा कि मैं बच नहीं पाऊँगा।

मैं अस्पतालमें जिस बेडपर सोया था, उसके सिरहाने दीवालपर भगवान् लड्डू-गोपालकी तस्वीर लगी हुई थी और ठीक सामनेकी तरफ भगवान् शंकरकी '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' की चन्द्राकार तस्वीर लगी हुई थी, जिसमें भगवान् शंकरका विश्राम करते हुए चित्र था। मैंने भगवान् कृष्णकी तरफ देखते हुए कहा—'कन्हैया, मुझे मरनेकी चिन्ता नहीं है। परंतु यह उचित समय नहीं है, यदि तुम ले जाना चाहो तो तैयार हूँ। क्योंकि मैं इस असहनीय कष्टसे ऊब गया हूँ।' इस प्रकार कहते हुए ज्यों ही भगवान्‌को नमस्कार किया त्यों ही मैं बेहोश हो गया। देखभालके लिये आये हुए पारिवारिक जन रोने लगे और तुरंत प्रसिद्ध संतोक्बा-दुर्लभजी हॉस्पिटल उपचारके लिये मुझे लोग ले गये, वहाँ पहुँचनेसे पहले ही मेरी धड़कन लगभग बंद-सी हो गयी। अत्यन्त घबराहटके साथ बार-बार लोग धड़कन सुननेकी चेष्टा करने लगे। अन्तमें मेरे भाईने निराश होकर मेरे बड़े लड़केसे कहा कि अब इन्हें घरपर ले चलो, क्योंकि अब डॉक्टर कुछ नहीं कर सकते। परंतु मेरे लड़केने बड़ी ही दृढ़तासे कहा कि एक बार तो हॉस्पिटल अवश्य ले जायँगे, फिर भगवान्‌की जैसी कृपा।

मुझे इमरजेन्सी वार्डमें ले जाया गया। जब डॉक्टर ऑक्सीजन लगाने लगे तो ऑक्सीजन नहीं लगा। डॉक्टरने निराश होकर कहा कि इनके जीवनका कोई लक्षण नहीं दिखायी दे रहा है। परिवारवाले रोने लगे। सब लोग बड़ी ही कातर-दृष्टिसे आशा लगाये हुए बार-बार डॉक्टरकी ओर देखने लगे। ठीक उसी समय किसी लक्षण-विशेषसे डॉक्टरको कुछ आशा जगी और उसने पुनः ऑक्सीजन लगा दिया। इधर परिवारवाले भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करने लगे। कुछ देर बाद मेरे दिलकी धड़कन वापस आ गयी। अनवरत इलाज चलनेके तीन घंटेके बाद मुझे होश आया और मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। मैं तो इसे वर्षोंसे गौशालाकी व्यवस्था एवं गोसेवा करनेका ही प्रत्यक्ष फल समझता हूँ। गौशालामें गौ माताकी सेवा-कृपासे मुझे एक नया जीवन मिला और साथ ही साथ मेरे दमेकी शिकायत भी धीरे-धीरे कम हो गयी। उसी दिनसे पूर्णतया गौ माताकी सेवामें लगा हुआ हूँ। जब भी मैं गायकी सेवामें बाहर निकला हूँ, मुझे कभी भी कोई तकलीफ नहीं हुई है। और अब मैं अपने परिवारके साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।—गोकलचंद कासट

(४)

'नारायण'-नामका अद्भुत चमत्कार

कुछ वर्ष पहले मेरे पास एक सज्जन आये। बातचीतके ही सिलसिलेमें उन्होंने मुझे अपना कष्ट सुनाया। वे बोले—कुछ वर्षोंसे मेरे ऊपर कोर्टमें केस चल रहा है, यद्यपि मेरा कोई दोष नहीं है फिर भी मेरी किस्मतका तो कोई दोष है ही जो लाख प्रयत्न करनेपर भी छुटकारा नहीं होता। मैं एक लाख रुपये भी देनेको तैयार हूँ, जिससे मेरी पेशी रुक जाय। मैं बहुत परेशान हो गया हूँ, कुछ समझमें नहीं आ रहा है क्या करूँ?

यह सुनकर मेरे मनमें 'कल्याण' में पढ़ी हुई उस सत्य घटनाका स्मरण हो आया, जिसे पूज्य श्रीभाईजीको प०पू० श्रीमालवीयजीने बताया था। वह अमूल्य वस्तु 'नारायण-नारायण'-का स्मरण है। मैंने कहा—देखो भाई! यदि तुम्हें विश्वास हो तो एक अत्यन्त सरल उपाय मैं बताऊँ, आशा है, भगवत्कृपासे तेरी पेशी निलम्बित हो जायगी। वे शीघ्र बोले—बताइये। मैंने कहा—इस बार जब तुम्हारी पेशी हो तब तुम 'नारायण-नारायण' कहते हुए कोर्टमें जाना। उसने सहर्ष स्वीकार किया और ऐसा ही किया। आश्चर्य ही नहीं वरन् महान् आश्चर्यकी बात है, जब वह 'नारायण-नारायण' का जप करते हुए कोर्टमें गया तो जजने निर्दोष बताकर उसकी छुट्टी कर दी। उसके प्रसन्नताकी सीमा न रही। फिर बादमें जब वह मुझसे मिला तो मैंने पूछा—केसका क्या हुआ? वह बोला—महाराज! क्या बताऊँ चमत्कार हो गया। आपके कथनानुसार मैं 'नारायण-नारायण' कहकर कोर्टमें गया, जज साहबने निर्दोष कहकर केस खारिज कर दिया। जिस कामके लिये मैं इतने दिनोंसे परेशान था, वर्षों दौड़-धूप करता रहा, कई वकील बदले, लाखों खर्च किया, इसके बावजूद कुछ भी न हुआ। परंतु नारायणके नामने मेरा तत्काल उद्धार कर दिया। अब तो मैं कहीं भी यात्रामें जाता हूँ, दुकानपर जाता

हूँ या गाड़ी (कार)-में बैठता हूँ या कोई भी कार्य शुरू करता हूँ तो उसके पूर्व इस महामन्त्रका जप अवश्य करता हूँ।

मेरे घरमें सभी सदस्योंको 'नारायण' मन्त्रपर पूर्ण भरोसा हो गया है। मेरी छोटी पोती जिसकी उमर एक वर्ष है, अभी वह स्पष्ट बोल भी नहीं पाती है तो भी 'नान्-नान्' कहकर मुस्कुराती है, बड़ी प्यारी लगती है। बोलिये 'नारायण'-नामकी जय। —परशुराम हंस

मनन करने योग्य

काम कोई छोटा नहीं

धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ चल रहा था।

यज्ञ अपने-आपमें एक महान् आयोजन है। इससे जुड़े हुए अनेक कार्य चलते हैं, यों कहिये कि अनजाने और अनचाहे विघ्न भी आ उपस्थित होते हैं। भक्तों और पुरोहितोंकी भीड़को सँभालना कठिन हो जाता है। अनेक बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों, नौकरोंके सहयोगसे ही यह कार्य सफल हो पाता है। एक व्यक्तिके सामर्थ्यकी बात नहीं।

जो भी सुनता, अपने मनकी शान्ति और आत्माकी शुद्धिके लिये राजसूय-यज्ञमें सम्मिलित होनेको अपना सौभाग्य समझता। भोजन करनेवालोंकी भी बहुत बड़ी संख्या थी। न जाने कितने ब्राह्मण, पुरोहित तथा धार्मिक-वृत्तिके महापुरुष आकर अपनी पूजा-आराधनासे उस धार्मिक उत्सवको पवित्र कर रहे थे।

यदि महायज्ञमें आनेवाले सभी लोग सहयोग करें, सभी कार्योंमें तन्मयतासे हाथ बटायें और उन्हें मन लगाकर पूरा करें, तो सफलता अवश्य ही मिलती है।

धर्मराज युधिष्ठिर सहयोगकी दृष्टिसे सभी मित्र और सम्बन्धियोंसे उनका मनचाहा कार्य पूछ रहे थे। कौन किस कार्यको करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है, यही देखनेकी बात थी। प्रायः सभीने अपने-अपने जिम्मे कोई-न-कोई सेवाकार्य ले लिया था।

अब धर्मराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णसे पूछते हैं—'भगवन्! आपने अभीतक अपना मन-पसंद कार्य नहीं चुना है? राजसूय-यज्ञ बिना आपके सहयोगके कैसे पूर्ण हो सकेगा?'

श्रीकृष्णने उत्तर दिया—'मेरी बारी तो सबके अन्तमें आयेगी। पहले अन्य महानुभावोंको उनके मन-पसंद कार्य चुन लेने दीजिये।'

'फिर तो अप्रिय और कठोर कार्य ही बचेंगे, भगवन्!'

'कोई हर्ज नहीं।'

और इस प्रकार सबने राजसूय-यज्ञमें अपने-अपने मन-पसंदका कार्य चुन लिये। सभी खुशी-खुशी अपना इच्छित कार्य चुन रहे थे जिसमें श्रम तो कुछ भी न करना पड़े लेकिन वे काममें अधिकाधिक तत्पर दिखायी दें, यज्ञमें महत्त्वपूर्ण प्रतीत हों। वे प्रायः ऐसा कार्य लेना चाहते थे जो महज दिखावटी हो, और वे अधिकाधिक काम करते दिखायी दें। जिसमें वाहवाही और प्रशंसा प्राप्त हो तथा महत्त्वपूर्ण कार्योंके सम्पादनका श्रेय भी उन्हें मिल जाय।

आखिर सभीने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार यज्ञमें सहयोग देना स्वीकार कर मन-पसंद कार्य चुन लिया।

धर्मराज युधिष्ठिरने फिर दोहराया—'भगवन्! आपकी पुण्य प्रेरणा और सहज सहयोगके बलपर ही तो राजसूय-जैसा महायज्ञ प्रारम्भ होने जा रहा है। इसमें असंख्य अतिथि आ रहे हैं। भजन-पूजन और यज्ञ-कार्यमें आये असंख्य अतिथियोंके भोजनका भी प्रबन्ध करना होगा। सभीने अपना-अपना उत्तरदायित्व स्वयं अपने ऊपर ले लिया है। किंतु आपने अभीतक चुनाव नहीं किया है।

'ठीक है तो लो सुनो युधिष्ठिर! मेरी रुचिका कार्य!'

'वह कौन-सा काम है भगवन्?'

'युधिष्ठिर! आज हम सब मात्र दिखावे और औपचारिकतामें फँस गये हैं। हम वे ही दिखावटी काम करनेकी जिम्मेदारी लेते हैं, जिनमें वास्तविक श्रम बहुत कम, दिखावा ही अधिक होता है। मिथ्या प्रदर्शनकी थोथी भावनाने हमें जिंदगीके यथार्थसे दूर ला पटका है। यदि व्यक्ति केवल अनावश्यक दिखावेमें ही फँसा रहा, प्रदर्शनसे दूर किंतु अत्यावश्यक शुष्क और कठोर नीरस श्रमसाध्य कामोंकी उपेक्षा करता रहा तो किसी भी महान् कार्यमें उसे सफलता

कैसे प्राप्त होगी?'

युधिष्ठिर कुछ समझे नहीं।

श्रीकृष्णने आगे कहा—'यज्ञका बाह्य दीखनेवाला रूप तो पूजा-अर्चना है। वह निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है, किंतु यज्ञका आन्तरिक और अधिक आवश्यक रूप भी है।'

'वह क्या है भगवन्? यह मर्म स्पष्ट कीजिये!'

'निष्काम सेवा, ऐसे कार्य करना जो ऊपरी निगाहसे तो नजर न आये, पर हो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण! इसपर कभी किया है चिन्तन आपने?'

'कृपा कर अपना दृष्टिकोण और स्पष्ट कीजिये, भगवन्?'

'युधिष्ठिर, धर्मक्षेत्रमें गुप्त-दानका सर्वाधिक महत्त्व है; क्योंकि उसमें दिखावा तनिक भी नहीं, गिरे-पड़े पीड़ित लोगोंकी सेवा-सहायता ही प्रधान लक्ष्य है। यदि धर्ममें मात्र प्रदर्शनका भाव आ गया, तो उसका लक्ष्य तो केवल आत्म-विज्ञापन ही रहा।'

'भगवन्, आपने अपनी रुचि स्पष्ट नहीं की अभीतक?'

'तो सुनो, युधिष्ठिर, मैं तुम्हारे राजसूय-यज्ञमें अतिथियोंके भोजनोपरान्त जूठी पत्तलोंको उठाने, वहाँकी भूमि साफ करने और स्वच्छता बनाये रखनेका कार्य करूँगा।'

ये शब्द थे या तीक्ष्ण बाण! सुनकर धर्मराज चकित-विस्मित हो उठे!

'भगवन्! यह तो छोटोंका काम है! आप यह क्या कह रहे हैं?'

'हाँ, मैं सही कह रहा हूँ। जूठन साफ करने और पत्तल उठानेका कार्य मैं अपने ऊपर लेता हूँ।'

'आप मुझे धर्म-संकटमें डाल रहे हैं। मैं किस जिह्वासे ऐसा छोटा कर्म करनेकी स्वीकृति दूँ? क्या कहूँ आपके जवाबमें? आप फिर विचार कर कोई सुन्दर काम चुनें। मेरे विचारसे तो नये आकर्षक परिधानमें बाहरसे आनेवाले गण्यमान्य अतिथियोंके स्वागत-सत्कारका प्रतिष्ठित सुसंस्कृत स्वच्छ कार्य ही आपके लिये उपयुक्त रहेगा?'

'युधिष्ठिर, यह तो अत्यधिक सरल कार्य है। इसे तो कोई भी मामूली आदमी आसानीसे कर सकता है। महत्त्व तो उस कार्यके करनेमें है जो कठिन है और जिसपर सम्पूर्ण व्यवस्था टिकी हुई है, पर उसमें प्रदर्शन तनिक भी नहीं है। जूठन उठाने और जूठे बर्तन माँजनेका काम छोटा समझा जाता है, पर व्यवस्थाकी दृष्टिसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस कठोर कार्यको बाहरसे आनेवाला कोई भी व्यक्ति नहीं करना चाहेगा। यज्ञका असली मतलब तो बाहरी और आन्तरिक स्वच्छता है। छोटे कहलानेवाले कार्य हमारे अहंकारको दूरकर आत्माके मैलको दूर करते हैं। नीच कहलानेवाले कामोंको न करना मनुष्यकी संकीर्ण विचारधाराके परिणाम हैं। समाजका हर एक कार्य—चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, अपना महत्त्व रखता है। हर कार्य फेर-बदलकर हर व्यक्तिके जिम्मे होना चाहिये, जिससे ऊँचा उठने और उन्नतिके अवसर हर वर्गको समान-रूपसे मिल सकें! मन्दिरका चमकता हुआ स्वर्ण-कलश इतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना उसकी नींवका पत्थर—आन्तरिक स्वच्छता। आप तो तत्त्वज्ञ हैं, फिर ऐसा क्यों कहते हैं कि 'यह काम छोटा है'।

'भगवन्, तब तो धर्मका क्षेत्र बड़ा व्यापक मालूम पड़ता है?'

'हाँ, युधिष्ठिर, धर्मका लक्ष्य तो बाह्य और आन्तरिक शुद्धि है। यह स्वच्छता केवल स्नान, नये वस्त्र धारण, ध्यान-पूजन, अर्चनमात्रसे ही पूरी नहीं होती, इसके लिये पास-पड़ोसकी स्वच्छता, नालियों और शौचालयोंकी सफाई, अन्धकार दूर करना, प्रकाशका प्रबन्ध, वृक्षारोपण, अपना कार्य स्वयं करना, श्रमदान, बीमारोंकी सेवा आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जो समाजकी उन्नतिमें सहायक हैं और इसलिये धर्मके अन्तर्गत आते हैं। सभीके सहयोगसे ये शुष्क और गंदे काम आसानीसे सम्पन्न कराये जा सकते हैं। निन्द्य कहलानेवाले कार्योंको पूर्ण करनेसे अहंकार, आलस्य एवं क्रोध-जैसी वृत्तियाँ स्वयमेव नष्ट हो जाती हैं। हम मनुष्यत्वकी ओर अग्रसर होते हैं। अज्ञान, मूढ़ता, दुराग्रह, हिंसा, आलस्य, रूढ़िवादिता आदि मानसिक विकारोंको दूर करनेके लिये यह श्रमदान आवश्यक है।

और जूठी पत्तलोंको उठानेका काम भगवान् श्रीकृष्णने ही किया।

—श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०

॥ श्रीहरि: ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

—के ७०वें वर्ष (वि० सं० २०५२-५३,सन् १९९६ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

पद्य-सूची

संकलित पद्य-सूची

संकलित सामग्री

नवीन प्रकाशन

१-साधन-सुधा-सिन्धु—[परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज]-इस ग्रन्थमें स्वामीजीद्वारा लिखित, समय-समयपर दिये गये प्रवचनोंसे संगृहीत एवं सं० २०१० से २०५३ तक लगभग ५० पुस्तकोंके माध्यमसे प्रकाशित ज्ञानवर्धक सामग्रीका अनूठा संग्रह है। यह ग्रन्थ तत्त्वज्ञानके ऊँचे सिद्धान्तों एवं वर्तमान समाजमें प्रचलित हर विन्दुपर समाधानपरक सामग्रीसे पूर्ण होनेके कारण अत्यन्त उपादेय एवं संग्रहणीय है। उपहार आदिमें देने-हेतु यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं कल्याणकारी है। ग्रन्थाकार पृष्ठ-सं० १००८, कपड़ेकी मजबूत जिल्द एवं रंगीन सुन्दर लेमिनेटेड आवरणसे सज्जित। मूल्य रु० ७०, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसे) रु० २०

२-मनोबोध—इस पुस्तकमें समर्थ गुरु श्रीरामदासजीद्वारा रचित २०५ भगवत्प्राप्ति एवं जीवन-यापनकी सरल प्रक्रिया सिखानेवाले पदोंका सानुवाद संकलन है। इनकी रचना समर्थ गुरुजीने अपने मनको आध्यात्मिक एवं दार्शनिक तत्त्वोंका उपदेश देने-हेतु की थी। मूल्य रु० ४, डाकखर्च रु० १

३-गायकी महत्ता और आवश्यकता—इस पुस्तकमें गायकी महत्ता एवं आवश्यकताको ध्यानमें रखकर शोधपरक सामग्रीका संकलन किया गया है तथा विभिन्न भारतीय संस्कारोंमें 'गाय' के उपयोगको प्रश्नोत्तर-शैली एवं सुबोध प्रसंगोंके माध्यमसे समझाया गया है। मूल्य रु० १, डाकखर्च रु० १

काफी दिनोंसे अप्राप्य पुनर्मुद्रित

१-श्रीमद्भगवद्गीता साधक-संजीवनी—[मराठी] [टीकाकार—परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज] इस ग्रन्थमें गीताके मर्मको समझाने-हेतु व्याख्यात्मक-शैली एवं सरल-सुबोध भाषामें गीताके गूढ़ भावोंका विवेचन दिया गया है। यह संशोधन-प्रक्रियामें होनेसे कुछ महीने अप्राप्य हो गया था, अब यह सुन्दर टाइपोंमें दुबारा सेट करवाकर प्रकाशित किया गया है। मूल्य रु० ७०, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसे) रु० २०

२-श्रमण नारद—यह पुस्तक सर्वप्रथम एक बौद्ध महानुभावद्वारा पाली भाषामें लिखी गयी थी, जिसको पढ़कर चमत्कारिक परिणामसे प्रभावित होकर विद्वानोंने इसका कई भाषाओंमें अनुवाद किया। व्यावहारिक ज्ञान सिखानेवाली यह पुस्तक उपहारमें वितरण करने योग्य है। मूल्य रु० २, डाकखर्च रु० १

३-मूल रामायण—वाल्मीकिरामायण पद्यमय ग्रन्थका आदिकाव्य है। इसी ग्रन्थके प्रथम सर्गमें देवर्षि नारद और महर्षि वाल्मीकिका यह संवाद भगवान् रामके वनसे लौटकर अवधके राज-सिंहासनपर आसीन होनेके बाद हुआ। मूल्य रु० १, डाकखर्च रु० १

शीघ्र प्रकाश्य

१-संतवाणी अङ्क—['कल्याण' वर्ष २९ सन् १९५५ ई०] संत-महात्माओं और अध्यात्मचेता महापुरुषोंके लोक-कल्याणकारी प्रेरणाप्रद उपदेशों, उद्बोधनों (वचन और सूक्तियों)-का यह बृहद् संग्रह नित्य पठनीय और संग्रहणीय है। मूल्य रु० ८५, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसे) रु० २०

२-श्रीराम-धारावाहिक चित्रकथा—भगवान् श्रीरामके जीवन-प्रसंगोंके चित्रकथा प्रकाशन श्रृंखलाके अन्तर्गत यह 'रामलला' के बाद द्वितीय कड़ी है, इसमें भगवान् श्रीरामद्वारा विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षा, राक्षसोंका वध, अहल्या-उद्धार एवं पुष्पवाटिकासे लेकर श्रीराम-विवाहतकके प्रसंगोंको बहुरंगे चित्र एवं तत्सम्बन्धी प्रसंग-कथाके साथ दिखाया गया है।

३-श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—(सुन्दरकाण्ड मूल) पाकेट साइज-नित्यपाठ-हेतु अत्यन्त उपयोगी।

४-गीता-ज्ञानेश्वरी-मूल—(पाकेट साइज) महाराष्ट्रके प्रसिद्ध संत पू० श्रीज्ञानेश्वरमहाराजजीद्वारा रचित गीताका मराठी भाष्य।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

प्र० ति० १८-११-९६

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT.

॥ श्रीहरि: ॥

जनवरी १९९७ का विशेषाङ्क—'कूर्मपुराणाङ्क'

[ग्राहक महानुभावोंसे निवेदन]

इस वर्ष १९९६ ई० के अन्तिम माह-'दिसम्बर'का यह अङ्क आपकी सेवामें प्रस्तुत है। आगामी (जनवरी १९९७ ई०)-का विशेषाङ्क '**कूर्मपुराणाङ्क**' के दिसम्बर मासमें छप जानेकी सम्भावना है। इसे ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जनवरी तथा फरवरी १९९७ में ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें भेजनेका विचार है। विशेषाङ्कके साथ ही फरवरी तथा मार्चके अङ्कोंको भी भेजनेकी चेष्टा है। '**कल्याण**'के प्रेमी ग्राहकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि '**धर्मशास्त्राङ्क**'की उपादेयता एवं लोकप्रियताके कारण प्राय: सभी अङ्क बिक चुके हैं। इसी प्रकार '**कूर्मपुराणाङ्क**'के ग्राहकोंकी संख्यामें काफी वृद्धि होनेकी सम्भावना लगती है।

अत: जिन ग्राहक महानुभावोंने आगामी वर्षके लिये शुल्क-राशि अभीतक नहीं भेजी है, वे अविलम्ब रु० ८०.०० (सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ९०.००) भेज दें, जिससे उन्हें '**कूर्मपुराणाङ्क**' रजिस्टर्ड पोस्टसे भेजनेमें प्राथमिकता दी जा सके। जिनका वार्षिक शुल्क दिसम्बरके मध्यतक प्राप्त न हो सकेगा, उन्हें गत वर्षकी तरह अजिल्द विशेषाङ्क (रु ५.०० वी०पी०पी० खर्च जोड़कर) रु० ८५.०० की वी०पी०पी० से भेजा जायगा। वी०पी०पी० भेजनेकी प्रक्रिया प्रारम्भ होनेके बाद जिन ग्राहकोंका मनीआर्डर प्राप्त होगा, उनके रुपयोंका समायोजन समयसे न हो सकनेके कारण हमारे न चाहते हुए भी विशेषाङ्क उन्हें वी०पी०पी० द्वारा जा सकता है। ऐसी परिस्थितिमें आप वी०पी०पी० छुड़ाकर किसी अन्य सज्जनको '**कल्याण**' का नया ग्राहक बनानेकी कृपा करें। ऐसा करनेसे आप '**कल्याण**' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ इसके पावन प्रचार-कार्यमें सहयोगी बनेंगे। ऐसे ग्राहकोंसे मनीआर्डरद्वारा प्राप्त राशि अन्य निर्देश न मिलनेतक अगले वर्षके वार्षिक शुल्कके निमित्त जमा कर ली जाती है। जिन महानुभावोंने वी०पी०पी० छुड़ाकर किसी दूसरेको ग्राहक बना दिया है, वे हमें शीघ्र 'नये ग्राहक'का नाम और पता, वी०पी०पी० छुड़ानेकी सूचना तथा अपने मनीआर्डर भेजनेका विवरण साफ-साफ स्पष्ट अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें, जिससे उनके आये मनीआर्डरकी जाँच करवाकर रजिस्ट्रीद्वारा उनका अङ्क तथा नये ग्राहकका अङ्क नियमितरूपसे भेजा जा सके। जिन ग्राहकोंको '**कूर्मपुराणाङ्क**'की रजिस्ट्री/वी०पी०पी० मार्च १९९७ के प्रथम सप्ताहतक न प्राप्त हो तो वे अपनी वर्तमान ग्राहक-संख्या लिखकर पत्र-व्यवहार करनेकी कृपा करें।

एक विशेष प्रार्थना—ग्राहक महानुभावोंसे प्राप्त होनेवाले पत्रोंमें स्पष्ट पढ़ने योग्य ग्राहक-संख्या तथा उनका नाम एवं पूरा पता न लिखे होनेके कारण उसपर समयानुसार उचित कार्यवाही नहीं हो पाती है, जिससे ऐसे ग्राहक महानुभावोंको असंतोष होना एवं पुन: पत्र लिखना स्वाभाविक है। अत: सभी ग्राहक सज्जनोंसे हमारी प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहारमें सही ग्राहक-संख्या/नाम-पता आदि स्पष्ट लिखनेपर विशेष ध्यान देवें। जनवरीसे मार्चतकके महीनोंमें विशेषाङ्ककी दो लाखसे अधिक रजिस्ट्री/वी०पी०पी० आदिका प्रेषण होता है, जिसके फलस्वरूप हमारी पूरी चेष्टा होते हुए भी ग्राहकोंके पत्रोंका उत्तर समयानुसार नहीं दे पाते हैं। हमारे उदार ग्राहक महानुभाव इस परिस्थितिपर विचार करते हुए हमें विलम्बके लिये क्षमा करें।

जयपुरके स्थानीय ग्राहकोंसे अनुरोध है कि वे हमारे अधिकृत विक्रेता—गीताप्रेस पुस्तक प्रचार केन्द्र (बुलियन बिल्डिंगके अंदर, हल्दियोंका रास्ता) जयपुरके यहाँ १५ जनवरीतक वार्षिक शुल्क अवश्य भिजवा दें, जिससे उन्हें अङ्क-वितरणमें प्राथमिकता दी जा सके।

व्यवस्थापक—'**कल्याण**'—कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ० प्र०)